वर्ष १ अंक ५
विक्रम संवत् २०७५ माघ
फरवरी २०१९

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

फरवरी २०१९

वर्ष–१ अंक–५,
विक्रम संवत् २०७५
दयानान्दाब्द– १९५
कलि संवत् – ५११९
सृष्टि संवत् –१,९६,०८,५३,११९

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७९६५७९५११३)

❖

समन्वय सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(९९९३९७०९४०)

❖

आकल्पन
कुलदीप कुलश्रेष्ठ (दिल्ली)
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
ए–११,त्यागी विहार, नांगलोई,
दिल्ली–११००४१
चलभाष– ८१७८७१०३३४

अनुक्रम

विषय	पृष्ठ
१ शिक्षा और संस्कार – २ (सम्पादकीय)	०३
२ ईश्वर एक नाम अनेक	०५
३ शरारत, षड्यंत्र, झूठ और कल्पना......	०६
४ Intrestless knowledge of Brahmins	०९
५ सृष्टि एवं स्थिति	१२
६ देव दयानन्द......	१४
७ अपना डॉक्टर आप बनने का.....	१५
८ संगठन के मंत्र कोई ले गया	१७
९ क्या उपनिषद् वेदों के विरोधी हैं?	१८
१० वेद विवेचना	२०
११ भारतमाता के वीर सपूत : चंद्रशेखर आजाद	२४

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट – www.aryalekhakparishad.com
फेसबुक https://www.facebook.com/आर्यलेखकपरिषद्

Digital

शिक्षा और संस्कार – २

शिक्षा शब्द 'शिक्ष' 'विद्योपादाने' इस धातु से बनता है, इसका अर्थ है विद्या या ज्ञान को आत्मसात कराने की प्रक्रिया । महर्षि दयानन्द के अनुसार शिक्षा का तात्पर्य है **जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें, उसको शिक्षा कहते हैं।** (देखें – सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ का स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकरण)

शिक्षा ही उत्तम संस्कारित व्यक्तित्व निर्माण का साधन है। यह एक विधि है, एक कला है। इसके ठीक रहने पर यथेष्ट परिणाम मिलते है और विकृत होने पर दुष्परिणाम प्राप्त होते हैं। हमारी दुर्गति का कारण अशिक्षा और कुशिक्षा है।

शिक्षा की यदि कमी न होती,
जगती यहाँ ज्ञान की ज्योति।
तो घर–ग्राम स्वर्ग बन जाते,
पूर्ण शांति 'रस' में सन जाते।।

(भारत–भारती – मैथिलीशरण गुप्त)

भारत की पराधीनता का मुख्या कारण अशिक्षा और कुशिक्षा ही है, सदियों से इस कौम को जो कुछ शिक्षा के नाम से दिया जा रहा है, उससे मनुष्य नहीं बनते अपितु पशुओं से भी निकृष्ट नाम मात्र के मनुष्य बन रहे हैं। आज की सबसे बड़ी चिन्ता यह है कि 'विद्वान्',सयंमी और सदाचारी व्यक्तित्व कैसे बनें ? वर्तमान में दी जाने वाली शिक्षा वास्तव में शिक्षा है ही नहीं।

यह साम्प्रतिक शिक्षा हमारे सर्वथा प्रतिकूल है,
हममें हमारे देश के प्रति द्वेष मति की मूल है।
हममें विदेशी भाव भर कर यह भुलाती है हमें।।
सब स्वास्थय का संहार करके यह रुलाती है हमें।।

(मैथिलीशरण गुप्त)

इस बात को महर्षि दयानन्द ने भली तरह से समझा था और इसीलिए उन्होंने अपनी क्रांति का प्रारम्भ वास्तविक शिक्षा को पुनः प्रतिष्ठित करवाने से किया था। आर्यों! तुम उसे प्रतिष्ठित नहीं कर सके, यही तुम्हारे पतन और दुर्गति का कारण है।

शिक्षा का स्थूल अर्थ है सिखाना। प्रश्न है क्या सिखाना? इसका उत्तर है कि जो मनुष्य जीवन उत्पन्न हो वह उत्कृष्ट हो और स्वयं और समाज के लिए हितकर व उपयोगी हो। यही सिखाना है, मनुष्यता और सामाजिकता सिखाना है। इसके लिए उत्तम शिक्षकों की आवश्यकता होती है। दिनकर कवि के शब्दों में –

अशन–वसन से हीन, दीनता में जीवन धरनेवाले।
सहकर भी अपमान मनुजता की चिन्ता करनेवाले,
कवि,कोविद, विज्ञान–विशारद, कलाकार,पण्डित, ज्ञानी,
कनक नहीं,कल्पना, ज्ञान, उज्ज्वल चरित्र के अभिमानी,
इन विभूतियों को जब तक संसार न पहचानेगा,
राजाओं से अधिक पूज्य जब तक न इन्हें मानेगा,
तब तक धरती पड़ी पाप में, इसी तरह अकुलाएगी,
लाख यत्न करने पर, दुखों से छूट नहीं पाएगी।

आर्यों क्या हमारे पास योग्य शिक्षक और वास्तविक शिक्षा है ? यदि नहीं, तो फिर समग्र क्रांति का ऋषि स्वप्न कैसे साकार करोगे ?

शिक्षा प्रदान का मुख्य साधन है भाषा जो भावों की अभिव्यक्ति और आदान–प्रदान का माध्यम होती है और सामाजिक संघटन करती है। एक 'स्वस्थ' समाज का निर्माण शुद्ध, सशक्त, समर्थ भाषा के बिना नहीं हो सकता। संसार में मात्र एक ही भाषा है जो वास्तव में भाषा है और पूर्णतया समर्थ भाषा है, उसे आज कल संस्कृत भाषा कहा जाता है। यही वैज्ञानिक और मूल भाषा है, शेष भाषाएँ इसी की अपभ्रंश हैं, यही संसार में प्रचलित सम्पूर्ण भाषाओं की जननी है।

आज हमारी कोई भाषा नहीं है, भाषा के नाम पर विभिन्न बोलिओं का मिश्रण है। हमारी शिक्षा का माध्यम एक कचरा भाषा है जिसे अंग्रेजी कहते हैं, इसमें न तो सम्पूर्ण उच्चारण हैं और न ही पूर्णतया भावाभिव्यक्ति की क्षमता। फिर भी हमारे ऊपर थोपी हुई है। इस भाषायी गुलामी से मुक्त हुए बिना दयानन्द की क्रान्ति सफल नहीं हो सकती। क्या हममें इस भाषायी गुलामी के जुए को निज कन्धों से उतार फेंकने की इच्छा और अपेक्षित साहस है और वास्तविक भाषा के प्रति सम्मान और स्वाभिमान है?

हमारा शिक्षा शास्त्र भाषा सिखने से ही प्रारम्भ होता है, पश्चात व्याकरण सीखा कर भाषा पर अधिकार कराते हैं। इसके बाद नाना विद्याओं को ग्रहण करने और अधिकारी विद्वान् बनने का उपक्रम चलता है। हमारी शिक्षा प्रणाली की यह भी एक

विशेषता है कि अल्प समय और अल्प श्रम में ही अत्यधिक की प्राप्ति होती है जो बहुमूल्य होती है। महर्षि दयानन्द के अनुसार **'जितनी विद्या इस 'रीति' से बीस 'वा' इक्कीस वर्ष में हो जाती है उतनी अन्य प्रकार से शत् वर्ष में भी नहीं हो सकती।'**

– सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास

महर्षि दयानन्द की इस बात को सम्पूर्ण आर्यजगत में मात्र दो लोगों ने समझा था। एक पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी ने और दूसरे स्वामी श्रद्धानन्द ने। परन्तु स्वार्थी आर्य नेताओं ने उनकी नहीं चलने दी। अपनी शिक्षा प्रणाली को कभी व्यवहार में नहीं आने दिया, सदा उसकी उपेक्षा करते रहे। अन्य 'रीति' से पढ़ाकर हम अपनी भावी पीढ़ी नहीं बना सके। आर्य समाज को निस्संतान बना कर रख दिया। आर्यो! आर्ष शिक्षा प्रणाली को प्रतिष्ठा प्रदान करो।

आर्ष शिक्षा प्रणाली द्वारा निर्मित व्यक्तित्व संस्कारित, जितेन्द्रिय, सभ्य, धर्मात्मा, सत्यनिष्ठ, सदाचारी,सहानुभूति युक्त दानशील और विश्वास पात्र होता है। फलतः भ्रष्टाचार मुक्त, 'स्वस्थ' समाज स्थापित होता है, जहाँ बल, छल, और चोरी से किसी का सुख भाग छीना नहीं जाता। सबको उन्नति के समान अवसर मिलते हैं। अतः यह मुख्य करणीय हमें करना ही होगा। महर्षि दयानन्द की क्रान्ति अभी शेष है।

शिक्षा मनुष्य का मौलिक जन्म सिद्ध अधिकार है, वह सबको समान रूप से निःशुल्क मिलनी चाहिए। यही आर्ष परम्परा रही है –

पढ़ते हजारों शिष्य थे पर फीस ली जाती नहीं,
वह उच्च शिक्षा तुच्छ धन पर बेच दी जाती नहीं,
दे वस्त्र भोजन भी स्वयं कुलपति पढ़ाते थे उन्हें।
बस, भक्ति से संतुष्ट हो दिन दिन बढ़ाते थे उन्हें।।

सदियों से समाज शोषकों ने जन सामान्य को शिक्षा से वंचित रखा, स्त्रियों और शूद्रों को शिक्षा का अधिकारी ही नहीं माना गया और अब स्वतंत्र देश में शिक्षा को बेचने और खरीदने की वस्तु बनाकर रख दिया गया है। महर्षि दयानन्द ही एकमात्र ऐसा महापुरुष हुआ जिसने सबके लिए अनिवार्य शिक्षा, निःशुल्क शिक्षा, पक्षपात रहित और भेदभाव रहित शिक्षा का विधान किया। वे लिखते हैं –

'सब को तुल्य वस्त्र, खान–पान, आसन दिये जायें, चाहे वह राजकुमार व राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सब को तपस्वी होना चाहिये।' उन्होंने लड़के–लड़कियों के एक साथ पढ़ने का निषेध किया और कहा कि **'स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे'।**

हमने ऋषि की बात नहीं मानी। संशोधनवादी बनने में अपनी शान समझते रहे। आज राष्ट्र की समस्त समस्याओं का यदि कोई कारण है तो वह है महर्षि दयानंद प्रतिपादित विचारों का अनादर और उनकी उपेक्षा।

आर्यो! अब भी समय है, चेत जाओ अन्यथा पश्चाताप ही पल्ले पड़ेगा। सभी गुरुकुलों को जोड़कर अपना एक विश्वविद्यालय बनाओ। महर्षि दयानन्द प्रणीत पाठ्यक्रम अपनाओ और उसके कहे क्रम और विधि के अनुसार योग्य शिक्षकों द्वारा सबकी समान शिक्षा की व्यवस्था बनाओ और घरों में संस्कार विधि के अनुसार वैदिक कर्मकांड को पूरी शक्ति और निष्ठा के साथ प्रतिष्ठित करो। दोहरे चरित्र को अपनाकर देव दयानन्द के साथ गद्दारी मत करो। यदि अपने को ऋषि का अनुयायी आर्य कहते हो तो उसके अनुसार कार्य करो और जोखम उठाकर करो।

स्वयं वाजिन्स्तन्वं कल्पयस्व।
स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।।

– वेदप्रिय शास्त्री

धनहीनो न हीनश्च धनिकः स सुनिश्चयः।
विद्यारत्नेन यो हीनः स हीनः सर्ववस्तुषु।।

– चाणक्यनीति

अर्थ – धन–सम्पत्ति से हीन व्यक्ति हीन नहीं होता, वह निश्चित धनिक है, लेकिन जो विद्यारत्न से रहित है, वह सब प्रकार से हीन होता है। जीवन में हर सम्भव प्रयास करके विद्या की प्राप्ति करनी–करानी चाहिए।

ईश्वर एक नाम अनेक

ओं शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्य्यमा
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः।।

— ऋग्वेद० अ.1। अ.6। व.18। मं.9।।

व्याख्यान :— हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव, हे अद्वितीयानुपमजगदादिकारण, हे अज निराकार सर्वशक्तिमन्, न्यायकारिन, हे जगदीश, सर्वजगदुत्पादकाधार, हे सनातन, सर्वमंगलमय, सर्वस्वामिन्, हे करुणाकरास्मत्पितः परमसहाय, हे सर्वानन्दप्रद, सकलदुःखविनाशक, हे अविद्यान्धकारनिर्मूलक, विद्यार्कप्रकाशक, हे परमैश्वर्यदायक, साम्राज्यप्रसारक, हे अधमोद्धारक, पतितपावन, मान्यप्रद, हे विश्वविनोदक, विनयविधिप्रद, हे विश्वासविलासक, हे निरंजन, नायक, शर्मद, नरेश, निर्विकार, हे सर्वान्तर्यामिन्, सदुपदेशक, मोक्षप्रद, हे सत्यगुणाकर, निर्मल, निरीह, निरामय, निरुपद्रव, दीनदयाकर, परमसुखदायक, हे दारिद्यविनाशक, निर्वैरविधायक, सुनीतिवर्धक, हे प्रीतिसाधक, राज्यविधायक, शत्रुविनाशक, हे सर्वबलदायक, निर्बलपालक, हे सुधर्मसुप्रापक, हे अर्थसुसाधक, सुकामवर्द्धक, ज्ञानप्रद, हे सन्ततिपालक, धर्मसुशिक्षक, रोगविनाशक, हे पुरुषार्थप्रापक, दुर्गुणनाशक, सिद्धिप्रद, हे सज्जनसुखद, दुष्टताड़न, गर्वकुक्रोधकुलोभविदारक, हे परमेश, परेश, परमात्मन्, परब्रह्मन्, हे जगदानन्दक, परमेश्वर व्यापक सूक्ष्माच्छेद्य, हे अजरामृताभयनिर्बन्धनादे, हे अप्रतिमप्रभाव, निगुर्णातुल, विश्वाद्य, विश्ववन्द्य, विद्वद्विलासक, इत्याद्यनन्तविशेषणवाच्य, हे मंगलप्रदेश्वर! आप सर्वथा सबके निश्चित मित्र हो, हमका सत्यसुखदायक सर्वदा हो, हे सर्वोत्कृष्ट, स्वीकरणीय, वरेश्वर! आप वरुण अर्थात् सबसे परमात्तम हो, सो आप हम को परमसुखदायक हो, हे पक्षपातरहित, धर्म्मन्यायकारिन्! आप आर्य्यमा (यमराज) हो इससे हमारे लिये न्याययुक्त सुख देनेवाले आप ही हो, हे परमैश्वर्य्यवन्, इन्द्रेश्वर! आप हमको परमैश्र्वयुक्त शीघ्र स्थिर सुख दीजिये। हे महाविद्यावाचोधिपते, बृहस्पते, परमात्मन्! हम लोगों को (बृहत्) सबसे बड़े सुख को देनेवाले आप ही हो, हे सर्वव्यापक, अनंत पराक्रमेश्वर विष्णो! आप हमको अनंत सुख देओ, जो कुछ मांगेंगे सो आपसे ही हम लोग मांगेंगे, सब सुखों का देनेवला आपके विना काई नहीं है, सर्वथा हम लोगों को आपका ही आश्रय है। अन्य किसी का नहीं क्योंकि सर्वशक्तिमान् न्यायकारी दयामय सबसे बड़े पिता को छोड़ के नीच का आश्रय हम लोग कभी न करेंगे, आपका तो स्वभाव ही है कि अंगीकृत को कभी नहीं छोड़ते सो आप सदैव हमको सुख देंगे, यह हम लोगों को दृढ़ निश्चय है।।1।।

— महर्षि स्वामी दयानन्द जी द्वारा प्रणीत आर्याभिविनय से उद्धृत

शरारत, षड्यंत्र, झूठ और कल्पना : विदेशी इतिहासकारों का आधार

– अखिलेश आर्येन्दु

पिछले अंक में मैंने उन पहलुओं को रखने का प्रसास किया था जो ईसाई पादरियों के द्वारा कल्पना व झूठ के आधार पर स्थापित तथ्य के रूप में प्रस्तुतकर एक षड्यंत्र के तहत, विश्व इतिहास में मान्यता दिलाने का प्रयास किया गया। ध्यान रहे, अंग्रेज शासक और पादरी जहाँ भी गए वहाँ–वहाँ 'फूट डालो–राज्य करो' की नीति अपनाई जिससे उनका शासन दीर्धकाल तक निर्विध्न चलता रहे। भारत में जन्मगत जाति प्रथा और जातिवाद भारतीय समाज की बहुत बड़ी कमजोरी सदियों से रही है। इसका फायदा केवल अंग्रेजों ने ही ने नहीं उठाया बल्कि अन्य विदेशी आक्रांताओं–तुर्क, मुसलमान, डच, मंगोल जैसे विदेशी आक्रमणकारियों ने भी उठाया। आज भी भारतीय समाज में जन्मगत जाति प्रथा विध्वंसकारी रूप में भारतीय मेधा और शक्ति को समाप्त कर रही है। इसमें राजसत्ता का भी हाथ है और जातिवादी स्वार्थवादियों का भी। भारतीय इतिहास में वर्णित मूलनिवासी और आक्रमणकारी आर्य जैसा काल्पनिक इतिहास आज भी छोटे और बड़े सभी प्रकार के छात्र–छात्राओं को पढ़ाया जा रहा है। कुछ तथाकथित जनजागरण करने वाली संस्थाएं भोली भाली जनता को मूलनिवासी और आक्रमणकारी विदेशी आर्य जैसे काल्पनिक बातों को लेकर बहकाने और बरगलाने में लगे हुए हैं। जो कार्य अंग्रेजी शासनकाल में अंग्रेज पादरी किया करते थे वे सभी कार्य ऐसी संस्थाओं के जरिए किये जा रहे हैं। पिछले 70 वर्षों में यह कार्य भारतीय समाज को आपस में लड़ाने और देश को टुकड़ों में बांटने की विध्वंसकारी मानसिकता से किया जा रहा है। ध्यान रहे अंग्रेजों ने भारतीय लोगों को कई टुकड़ों में बांटा–जैसे पहाड़ी–मैदानी, उच्च जाति–निम्न जाति, हिन्दू–मुसलिम, उत्तर भारत–दक्षिण भारत, आदिवसी–गैर आदिवासी आदि। अंग्रेजों ने इन्हीं के आधार पार पाठ्य पुस्तकों की रचना भी की। राजनीतिक आजादी मिलने के बाद भारतीयों का शासन आया तो राजनैतिक दलों ने सामाजिक विरोधों को दूर करने के बजाय उसमें अपने 'वोट–बैंक' तलाश लिए जिसका परिणाम हमारे सामने है। भारतीय समाज दिशाहीन, भ्रमित और निहित स्वार्थ में अंधा होकर अतीत का गौरव, गर्व और स्वाभिमान समाप्त करता जा रहा है। वर्तमान में भारतीय समाज में एक वर्ग ऐसा भी तैयार हो गया जो आँख मूंदकर अंग्रेज पादरी इतिहासकारों द्वारा लिखित इतिहास को मानता है। वह यह मानने को तैयार ही नहीं है कि 'आर्य और अनार्य' या 'मूल निवासी और आक्रणकारी आर्य' जैसी बातें अंग्रेज पादरियों की कल्पना का परिणाम है जिसमें सच्चाई एक प्रतिशत भी नहीं है। दरअसल, पिछले 70 वर्षों में भारतीय शासन–सत्ता में अधिकांश समय ऐसे लोग काबिज रहे जो वामपंथी मानसिकता वाले और भारतीय गौरव–ज्ञान के विरुद्ध थे। ये यह मानने को तैयार ही नहीं थे और हैं कि संस्कृति सभ्यता और इतिहास के संदर्भ में इतिहास की पुस्तकों में जो भरतीय संस्कृति, भाषा, और ज्ञान–विज्ञान के सम्बंध में विरुद्ध बातें लिखी हैं वे अंग्रेज पादरियों के सरारत का परिणाम है। पिछले अंक में मैंने उन अनेक तथ्यों को तर्क और प्रमाण के आधार पर रखने का प्रयास किया था जो आर्य और द्रविण के सम्बंध में आवश्यक थीं। इस अंक में उसके आगे की कहानी पढ़िए।

–समन्वय सम्पादक

इतिहास, समाज, देश, भाषा, संस्कृति ऐसे विषय हैं जो अत्यंत संवेदनशील होने के साथ ही साथ सीधे तौर पर मानव जीवन से जुड़े हुए हैं। भारतीय समाज के सामान्य आदमी को इन विषयों पर न तो रुचि है और न तो गम्भीरता से इस पर सोचता ही है। यही कारण है कि अंग्रेजों द्वारा भारतीय संस्कृति, सभ्यता, धर्म, अध्यात्म, भाषा और समाज के सम्बंध में जिस तरह से गम्भीर षड्यंत्र और दुष्प्रचार किए गए उस पर उसने कभी न तो गम्भीरता से चिन्तन किया और न तो उससे (दुष्प्रचार व षड्यंत्र) समाज, संस्कृति, भाषा और धर्म पर पड़ने वाले प्रभावों को ही समझने के प्रयास किए। जिसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों ने भारत का जो तथाकथित इतिहास लिखा, भाषा के सम्बंध में जो तथाकथित तथ्य और विवेचनाएं प्रस्तुत कीं, वैदिक धर्म और वेद के सम्बंध में जो विश्व भर में दुष्प्रचार किया, भारतीयों के सम्बंध में जो अमानवीय चित्र विश्व के

सामने रखा और भारतीय मेधा के सम्बंध में जो विरोधी बातें विश्व भर में फैलाई, उस पर सामान्य जन को छोड़िए इतिहासकारों (विशेष रूप से वामपंथी), भाषाविदों और समाज वैज्ञानिकों ने भी निष्पक्ष, तथ्य परक और विश्लेषणपरक चिन्तन, गवेषणा और तर्क परक दृष्टि अपनाना भी ठीक नहीं समझा। अंग्रेजों ने इतिहास, भूगोल, भाषा, शिक्षा, नृविज्ञान, साहित्य, संस्कृति जैसे सभी विषयों पर जो लिखा, जो कहा, जो प्रस्तुत किया और जो बताया उन्हें ही आँख मूंदकर अपना लिया गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत, भारतीय समाज, भारतीय भाषा, भारतीय शिक्षा, भारतीय धर्म और भारतीय चिन्तन की धारा को निम्न और पिछड़ा समझा जाने लगा और अंग्रेजों को हर क्षेत्र में उत्कृष्ट और आधुनिक। इस सम्बंध में एक दूसरे पक्ष को भी समझने की आवश्यकता है।

अंग्रेजों के भारत पर अपना वर्चस्व स्थापित करने के पूर्व भारत में मुसलमान आक्रांताओं, मंगोलों और अन्य विदेशी क्रूर और शोषक लुटेरों ने भारत का जितना विध्वंस करना था मनमाने ढंग से किया। यह सब भारतीय राजाओं, रजवाड़ों और ताल्लुकेदारों के आपसी फूट का परिणाम था। भारतीय समाज को विशेषकर हिन्दू समाज को अशिक्षा, मूढ़ता, अज्ञानता, अंधविश्वास, पाखंड, अमानवीय प्रथाओं, कुरीतियों और कुप्रवृतियों में हिंदू समाज का मुख कहे जाने वाले लोगों ने धकेलने का कार्य किया था। चार वर्णों के स्थान पर 2000 जातियों में स्वार्थवादियों ने इसे बांट दिया था। भारत की क्षात्र शक्ति आपस में लड़ने के कारण कमजोर हो चुकी थी। अविद्या, अशिक्षा, अंधविश्वास, पाखंड और कुरीतियों में फंसे भारतीय समाज की समझ, बेचारगी और मूढ़ता के कारण विदेशी आक्रांताओं, लुटेरों और विधर्मियों ने भारत को लूटा ही नहीं बल्कि इसके गौरव, स्वाभिमान, बची–खुची शक्ति और शुचिता को भी तार–तार कर डाला। मुसलिम आक्रांताओं ने बिहार स्थित नालंदा और तक्षशिक्षा जैसे विश्व प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों को जलाकर राख कर डाला। इससे भारतीय ज्ञान–विज्ञान, साहित्य, समाज, संस्कृति, शिक्षा, धर्म और अध्यात्म की जो हानि हुई, उसे शब्दों में बयां नहीं किया जा सकता है। लेकिन आश्चर्य में डालने वाली बात यह है कि इतना सब कुछ होते हुए भी भारत की मेधा, संस्कृति, वैदिक धर्म, अध्यात्म, ज्ञान–विज्ञान जो संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं में लिखे गए थे किसी तरह वैदिक शिक्षा प्रणाली के 'गुरु–शिष्य' परम्परा होने के कारण बचा लिए गए थे। लेकिन वैदिक समाज–व्यवस्था, वैदिक जीवन शैली, वैदिक शिक्षा और वैदिक आश्रम–व्यवस्था को नहीं बचाया जा सका। माना जाता है कि वैदिक समाज–व्यवस्था जो गुण–कर्म–स्वभाव पर आधारित है, वैदिक जीवन शैली जो वेदों पर आधारित है, वैदिक शिक्षा जो वेद–वेदांगों पर आधारित है और वैदिक आश्रम–व्यवस्था जो वेद और उपांगों पर आधारित हैं, पुराणों के प्रचार–प्रसार के कारण समाप्त हुए। अर्थात् विदेशियों के कारण भी और भारतीय जातिवादी स्वार्थवादियों के कारण भी वैदिक व्यवस्थाएं तहस–नहस हुईं।

मानव अपने संस्कारों, शिक्षा, विद्या, संगति और व्यवहार के कारण अच्छा–बुरा बनता है। लेकिन यदि सतत स्वाध्याय किया जाए तो, वह अपने पवित्र और परम लक्ष्य को, अपने संकल्प और परिश्रम के बल पर प्राप्त कर सकता है। लेकिन पराधीनता के लगभग एक हजार वर्षों में भारतीयों का संकल्प, सत्साहस, स्वाभिमान, शक्ति, व्यापार, अभिव्यक्ति और गौरव–चेतना समाप्त हो गई। दूर–दृष्टि और चिन्तन–दृष्टि भी समाप्त हो गई। आज भी भारतीयों में दूर–दृष्टि और चिन्तन–दृष्टि का सर्वथा अभाव दिखाई पड़ता है। इसका प्रमाण हम अपनी गौरवशाली संस्कृति, भाषा, साहित्य, इतिहास, ज्ञान–विज्ञान और धरोहरों पर स्वाभिमान न करके विदेशी संस्कृति, जीवन शैली, भाषा, साहित्य, ज्ञान–विज्ञान, इतिहास को जानना और अपनाना लाभकारी समझते हैं। वामपंथी इतिहासकारों की दृष्टि भी पराधीन और निष्पक्ष नहीं रही। शिक्षा, स्वास्थ्य, विकास, व्यापार और ज्ञान–विज्ञान जैसे अनेक क्षेत्रों में विदेशी वस्तुओं, औषधियों, विदेशी–प्राणलियों, चिन्तन, खोज और संग्रह को ही मान्यता दी। हमने यह भी सोचना बन्द कर दिया कि हमारा ज्ञान–विज्ञान, साहित्य, भाषा, शिक्षा, विद्या और चिन्तन की भी कोई अहमियत होती है कि नहीं? वह पीढ़ी जो स्वतंत्रता के बाद पैदा हुई या 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक में पैदा हुई दोनों में कई स्तरों पर अंतर तो है ही विचारों और व्यवहारों में भी अंतर है। और स्वतंत्रता के पूर्व जो पैदा हुए, वह पीढ़ी असहाय जैसी स्थिति में भारतीय समाज और संस्कृति के क्षरण को देखकर विष के घूट पीने के

लिए विवश दिखाई पड़ रही है। समस्या कई स्तरों पर है। कुछ लोग इन्हें लाइलाज कहते हैं तो कुछ भगवान भरोसे मानकर अपनी विवशता व्यक्त करते हैं। निजी स्वार्थ इतना अधिक आ गया है कि समाज, संस्कृति और राष्ट्र के प्रति अपनी किसी भी जिम्मेदारी से कोई आगे बढ़कर 'राष्ट्र–चेतना जगाने के लिए' पहल करता दिखाई नहीं पड़ रहा है। ऐसे में मैकाले का सपना पूरी तरह यथार्थ होता दिखाई पड़ रहा है कि भारतीय नई पीढ़ी शरीर से तो भारतीय होंगी लेकिन विचारों, दिमाग और मन से पूरी तरह अंग्रेजियत में रंगी होगी। मूल निवासी और आक्रमणकारी आर्य का धरातल जिन पादरियों ने तैयार किया था उसे खाद–पानी वे भारतीय दे रहे हैं जो अंग्रेजों के प्रत्येक कार्य, विचार और नीति को सही ठहराते हैं। जाति के नाम यही लोग स्वयं को एक नई जाति–समूह 'शोषित–दलित' खड़ा करना चाहते हैं और शोर मचाते फिरते हैं कि हम ही इस देश के असली और मूल निवासी हैं। इसके लिए वे सभी तथाकथित तथ्य और तर्क प्रस्तुत करते हैं जो अंग्रेज पादरी और कुछ विदेशी–बामपंथी इतिहासकार प्रस्तुत करते रहे हैं। यहाँ इस बात को भी समझने की आवश्यकता है कि अधिकांश विदेशी यात्री, इतिहासकार और विद्वान भारत का इतिहास, भारतीय साहित्य–जिसमें धर्म ग्रंथ और भाषा के ग्रंथ सम्मिलित हैं पर अपनी खोज, विश्लेषण, विवेचना या समीक्षा प्रस्तुत करते समय कभी निष्पक्ष और अपने कार्य के प्रति ईमानदार नहीं रहे। जहाँ भी भारत को गौरव, ज्ञान–गरिमा और महत्त्व मिलता दिखाई पड़ता है, तुरन्त अपने सुविधानुसार बाईबिल और ईसाईयत के मुकाबले कमतर सिद्ध करने का प्रयास करते दिखाई देते हैं। भारतीय इतिहास लेखन में विदेशी यात्री अल्बेरूनी भारत के बारे में इस तरह लिखता है। वह लिखता है–'दुर्भाग्य से हिन्दू घटनाओं के ऐतिहासिक क्रम पर पूरा ध्यान नहीं देते। वे अपने राजाओं के राज्यारोहण के तिथिक्रम की उपेक्षा करते हैं। आइए, इसपर विचार करें कि अल्बेरूनी की इस बात में कितना दम है। अल्बेरूनी का कहना है कि भारतीय अपने राजाओं के राज्यारोहण के तिथिक्रम पर ध्यान नहीं देते। लेकिन यह बात पूरी तरह गलत है। संस्कृत, पालि और प्राकृत के अनेक ग्रंथ इस बात के प्रमाण हैं कि छोटे से लेकर बड़े राजाओं के राज्यारोहण को तिथि–वार के साथ लिखा जाता रहा है। महर्षि दयानन्द रचित सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द ने महाराज युधिष्ठिर से लेकर राजा यशपाल तक का तिथि–वार सहित वर्णन किया है। इस सम्बंध में प्रसिद्ध इतिहासकार प्रो. भण्डारकर का कथन उल्लेखनीय है। प्रो. भण्डारकर ने अल्बेरूनी का प्रत्याख्यान करते हुए लिखा है–अल्बेरूनी का यह कथन उस समय के लिए कुछ सत्य हो सकता है जब वह भारत में आया था और जब उसकी (भारत की) सभ्यता और संस्कृति पतनोन्मुख थी, किन्तु यह कहना कि मध्यकाल से पहले भारतीयों को इतिहास की समझ नहीं थी तथ्यों के विपरीत होगा। भारतीय लोगों ने इतिहास लिखा ही नहीं, यह सफेद झूठ है। गौरतलब है इतिहासबोध की ठीक जानकारी और इतिहास शब्द का प्रयोग और किसके लिए होता आया है उसे जानना आवश्यक है। विदेशियों द्वारा भारतीय शब्दों और उससे निकलने वाले अर्थों की समझ और उनके प्रति स्वीकृति का भाव न होने से कई प्रकार का भ्रम और द्वंद्व उन्हें रहा। और कुछ ऐसे भी विदेशी विद्वान् हुए जिन्हें समझ होते हुए भी भारत के गौरव, ज्ञान और अतिप्रतिष्ठा होने के कारण, उसे अपनी सुविधा के अनुसार ईसाईयत को सर्वोच्च मानने और उसे विश्व में सर्वोत्कृष्ट सिद्ध करने के उददेश्य से भी किया। इसमें उन्होंने पग–पग पर कल्पना और झूठ का भी खूब इस्तेमाल किया।

शेष चर्चा अगले अंक में करूंगा। –

परिषद् की वेबसाइट को आप

www.aryalekhakparishad.com

पर जा कर अवलोकन कर सकते हैं। यह पत्रिका भी इस वेबसाइट पर डाल दी जाती है अतः पत्रिका को पढ़ने के लिए साइट के लिंक

https://aryalekahkparishad.com/

आर्ष-क्रान्ति-पत्रिका

पर जाएं।

INTRESTLESS KNOWLEDGE OF A BRAHMINS

– Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडंगो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च

To study the four Vedas is an interestless duty of a scholar Brahmin. The study is a must one. It should be real, complete and free from any self-interest. Being interestless here means a pious knowledge in a pious heart. The position of a scholar Brahmin is not hereditary. It's rather an earned one. It is earned by truth, non-violence, self-control, non-collection, knowledge, devotion and character. In olden times this position was certainly earned. Even the modern thinkers like Rishi Dayanand, Swami Vivekanand, and Dr. Bhim Rao Ambedkar claim that the scholar Brahmin was not hereditary. Now-a-days the Brahmins are a hereditary caste.

People generally talk of 'heaven and hell' in the world. We can say that the earned Brahmanism is like the heaven and the hereditary Brahmanism is like the hell. We the Indians are divided into two schools on this issue and this comparison really holds good.

The scholar Brahmins have been true writers and great authors. They authored vast and deep, and all that without a coin of gold, silver or bronze. Rishi Kapil authored the **Saankhya Darshanam**, which speaks of 25 elements, out of which, 24 are inanimate and one animate. The animate category has two entities. The first is God and the other is Soul. The Soul sub-category comprises individual souls. They are infinite in number, all have a separate identity, and feel their own joy & sorrow.

Saankhya Darshanam and Yog Darshanam are called sister philosophies. Yog Darshan's author is Rishi Patanjali. It teaches the nature of mind, and how to control and pacify it. It also lays down the life-long procedure as how to conquer ourselves and how to realize God.

What are the properties of Earth, Water, Fire, Air, and Sky? What is Time? How are Directions defined by the Sun? What is a cause and what effect? What is general and what specific? What are the senses and how does a man walk in sleep? What are the signs of individual

souls and how are they many? What is Dharma in the physical and the spiritual sense? What is Vidya and what Avidya? What is the gravitational force? How does the rain water come down to earth? How does the groundwater rise to the top of a tree?

The above and many other questions have been answered in the Vaisheshika Darshanam, authored by Rishi Kanaada. This Darshan also defines an Anu? Since the Aru and Paramaanu, as given in this Darshan, and the molecule and atom, as used in the modern science, are not synonymous or identical, it is difficult to say as to how the anu is smaller than the atom, but it is certainly so. However, this Darshan explains the Universe as it furthers from Anu. The Anuvaada or Atomicism of Vaisheshika is well known to philosophy.

Vaisheshika Darshanam and Nyaaya Darshanam are defined as sister philosophies. Nyaaya Darshanam has been authored by Rishi Gautama. It is different from most of the spiritual systems since they are simply based on belief, whereas Nyaaya first takes logical investigations, makes observations, and then arrives at the reality. It is a science of Pramaanas or Evidences, and deals with four Pramaanas, namely, Pratyaksha or Perception, Anumaana or Inference, Upamaana or Comparison, and Shabda or Testimony. If a Knowledge is based on valid evidences, only then it is said to be a valid knowledge. Its technical glossary and examination of arguments and counter-arguments during the process of deciding a dispute is unparallel in the world literature.

Rishi Vyaasa and Rishi Jaimini were the teacher and pupil respectively. They have authored two books named Uttar Mimaansaa and Purva Mimaansaa. Their second names are Vedaanta and Mimaansaa respectively. Mimaansaa is a book of Karma or karmakaanda or Yajnas. It believes in the self-validity of Vedas. It calls Vedas as Apaurusheya' or created by no one. It teaches that the Vedic Karmakaanda is Dharma and it takes us to Swarga. Out of the six systems of Vedic philosophy, it is the thickest book that is read least.

Let us come to the meaning of Vedaanta. Having studied the Vedas, what remains there? There remains the realization of God. So, the Darshan that teaches us about God is the Vedanta Darshan. But Acharya Shankara has altogether changed the flavour of this Darshan. He was an exponent and not the author of this Darshan. So he should not have changed the meaning of the words of Rishi Vyaasa. Vyaasa says that God is the only maker of Universe. Shankara says that God is the only entity in the Universe. Thus Vyaasa's meaning has been distorted by Shankara. That is why Rishi Dayanand has renamed Shankara's Vedaanta as `Naveen Vedaanta' or the

Neo-Vedaanta, However, this Darshan is taught and studied the most in the world. It works as an obstruction in understanding the true meaning of the Vedas.

Rishi Manu wrote his Smriti and made laws for our personal, family, social, national and spiritual life. Several great Rishis wrote the Brahmanas, Aaranyakas and Upanishads. The Asshwalaayana, Aapastamba and Gobhiliya Grihasutras were written, and other Kalpasutras as well. Rishi Yaaska authored Nighantu and Niruktam. Acharya Pingala wrote the Chhandashastram. Bhaskara, Varaahamihira, Aaryabhatta and other scholar Acharyas wrote books on Jyotisha and Astronomy.

On Grammar, Rishi Paanini authored Ashtaadhyaayi, Muni Kaatyaayana made 8000 Vartikas and Rishi Patanjali (second) authored Mahabhashyam. On the Prasthaanatrayee, I.e. Vedanta, Gita, and Upanishads, the three combined, Acharya Shankara wrote in favour of Monism but wrote selflessly. Ramanujaacharya and Madhvaacharya followed him. Rishi Valmiki wrote the Ramayana on the life and warfare of Rama the Great. Rishi Vyaasa wrote the Mahabharatam and in one of its chapters included the Gita, actually narrated by Krishna the Great to Arjuna.

Acharya Chanakya wrote the Arthashastram and other books and Sutras. Bhartrihari wrote on grammar, politics, and spiritualism. Rishi Dayanand wrote the Satyartha Prakasha in Hindi. The list is not yet complete. Such a text, even one-fourth of it, is nowhere else in the world. So enormous is the Indian treasure on the spiritual and intellectual path. The world has written loads of trains, but very little on Godly lines.

All this has been authored selflessly and without getting a coin as the cost of writing. We salute the authors. Certainly, we are their readers.

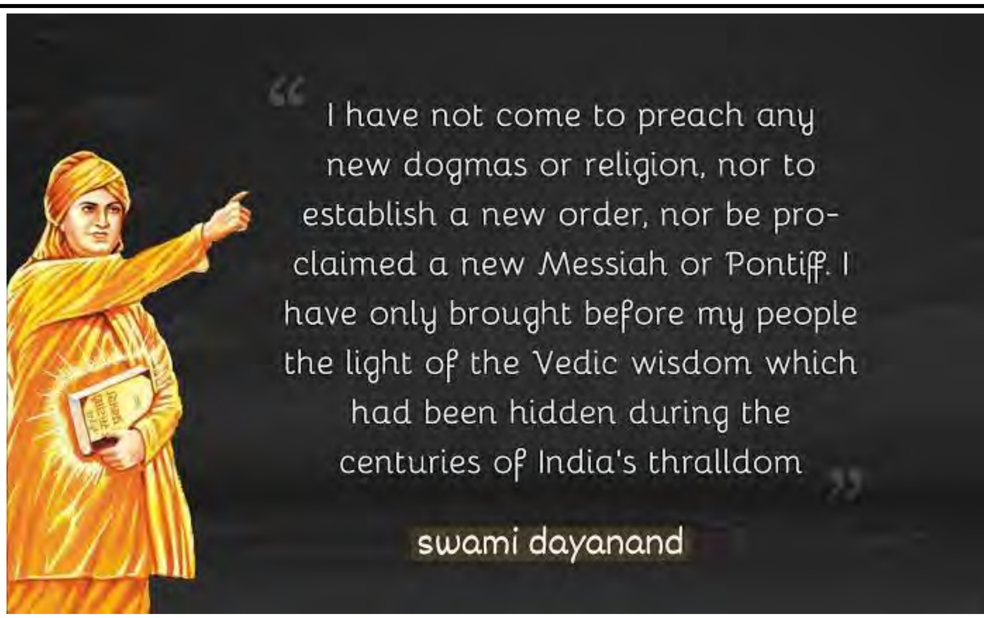

सृष्टि एवं स्थिति

– विमल कुमार एडवोकेट

आधुनिक वैज्ञानिक सृष्टि के रहस्य को खोजने में लगे हुए हैं! अभी तक जितनी खोजे हुई हैं उसमें से अनेक ऐसे रहस्य सामने आए हैं जो वेदों के सृष्टि निर्माण के संबंध में करोड़ों वर्ष पूर्व ऋषि–मुनि वेद मंत्रों के माध्यम से प्रकट कर चुके हैं !वेद के अतिरिक्त सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया का विधान विश्व के किसी भी अन्य ग्रंथ में नहीं है !वैज्ञानिक दार्शनिक एवं सृष्टि विज्ञान संबंधी वर्णन को समझने के लिए वेदों की ठीक और संतुलित समझ होना आवश्यक है! वेद परमेश्वर का ऐसा परम दिव्य एवं अमर उपहार मानव के लिए है जो प्रकृति मानव एवं जगत् तीनों की पवित्रता, कल्याण एवं विकास के सूत्र की संपूर्ण जानकारी देते हैं !सर्वदा व सर्वथा निष्पक्ष, पवित्र और ज्ञानमय प्रेरणा एवं उपदेश वेदों से हम प्राप्त कर सकते हैं और सृष्टि के रहस्य व उसकी स्थिति को भी समझ सकते हैं! प्रस्तुत लेख में सृष्टि के रहस्य एवं उसकी स्थिति को समझने का आचार्य विमल कुमार का प्रयास निश्चित ही स्तुति योग्य है !पाठक गण लेख का स्वाध्याय कर बताएं कि लेख आपके लिए कितना उपयोगी है –

– समन्वय सम्पादक

सृष्टि की उत्पत्ति और स्थिति का कर्ता और अधिष्ठाता सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक परमपिता परमात्मा है(ऋ. म. १० सूक्त १२६)। जिससे इस जगत् का जन्म, स्थिति और प्रलय होता है वही ब्रह्म जानने योग्य है(शारीरिक सूत्र अ. १ सू.२)। जिस समय कार्य सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी, तब एक सर्वशक्तिमान परमेश्वर और दूसरा जगत् का कारण अर्थात् जगत् बनाने की सामग्री विद्यमान थी। उस समय असत् (शून्य) नाम आकाश अर्थात् जो नेत्रों से देखने में नहीं आता वह भी नहीं था क्योंकि उस समय उसका व्यवहार ही नहीं था। उस काल में सत् अर्थात् सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण मिलकर जो प्रधान कहाता है वह भी नहीं था। उस समय परमाणु भी नहीं थे। यदि सत्, रज, तम अर्थात् आधुनिक विज्ञान की भाषा में इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन, प्रोटॉन में किसी प्रकार का कोई विद्युत आवेश नहीं था तथा विराट अर्थात् जो सब स्थूल जगत् के निवास का स्थान है वह भी नहीं था। जो वर्तमान जगत् है वह भी अनन्त शुद्ध ब्रह को नहीं ढक सकता और उससे अधिक वा अथाह भी नहीं हो सकता। जैसे कोहरे का जल पृथ्वी को नहीं ढक सकता। उस जल से नदी में प्रवाह भी नहीं हो सकता ना वह कभी गहरा और उथला हो सकता है। इससे यह जाना जा सकता है कि परमेश्वर अनन्त है और जो यह उसका बनाया जगत् है वह ईश्वर की अपेक्षा से कुछ भी नहीं है। (ऋ. म. अध्याय ७ मंत्र १)

महाप्रलय की स्थिति में ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों अनादि और नित्य सत्ताएं विद्यमान थीं, किन्तु जड़ प्रकृति, गहन अन्धकार अथवा कोहरे के समान थी। जैसा कि उपरोक्त वेद के प्रमाण से सिद्ध होता है। जड़ प्रकृति के अणु और परमाणु के सत्, रज, तम् अर्थात् इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन, प्रोटॉन में किसी प्रकार का विद्युत आवेश नहीं था और इन कणों में विद्युतावेश का ना हो ना ही जड़ प्रकृति की निष्क्रियता होने के कारण प्रकृति अपनी मूल अवस्था में थी।

इस अवस्था में जब जगत् नहीं था तब मृत्यु भी नहीं थी क्योंकि जब स्थूल जगत् के संयोग से शरीरादि उत्पन्न होकर वर्तमान हो, पुनः उसका और शरीरादि का वियोग ही मृत्यु कहाता है। किन्तु शरीरादि पदार्थ उत्पन्न हीं नहीं हुए थे। जब शरीरादि उत्पन्न हीं नहीं हुए थे, तो मृत्यु किसकी होती? अतएव यह स्पष्ट हुआ कि उस समय ना जन्म था न मृत्यु। **(ऋ. अ. ८ / अ. ७ व १७ मंत्र २)** और न रात थी, न ही दिन थे, इसका भी मूल कारण यह है कि सूर्य, चन्द्र, तारागण आदि की भी रचना नहीं थी। उस समय अर्थात् उस अवस्था में यह सब जगत् सृष्टि से पहले अन्धकार से आवृत्त रात्रि रुप में जानने के

अयोग्य, आकाश रूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सम्मुख एक देशी आच्छादित था। इसके पश्चात् परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारण स्वरूप से कार्य रूप कर दिया। (ऋ. म.१० सूक्त १२६)

समस्त ऊर्जा के स्रोत सूर्य आदि पदार्थो का आधार और जो यह जगत् उत्पन्न हुआ है और आगे भी उत्पन्न होगा उसका एकमात्र पति परमात्मा ही इस जगत् की उत्पत्ति के रूप में विद्यमान था जिसने पृथ्वी से लेकर सूर्य पर्यन्त जगत् को उत्पन्न क्रिया है। उस परमात्म तत्व रूपी देव की प्रेम से भक्ति किया करें। (ऋ. म.१० / सूक्त १२१ मंत्र १)

यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में भी कहा गया है कि– हे मनुष्यों! जो सबमें पूर्ण पुरुष और नाश रहित कारण और जीव का स्वामी जो पृथ्वियादि जड़ और जीव से अतिरिक्त है वही पुरुष इस सब भूत्, भविष्यत् और वर्तमनास्थ जगत् को जानने वाला है (यजुर्वेद अध्याय ३१ मंत्र २)। इसी बात की पुष्टि का प्रमाण तैत्तिरीयोपनिषद् में भी प्राप्त होता है जिसमें 'कहा गया है कि जिस परमात्मा की रचना से यह सब पृथिव्यादि भूत् उत्पन्न होते हैं जिससे जीते और जिसमें प्रलय को प्राप्त होते हैं वह ब्रह्म है। उसके जानने की इच्छा करो। (तैत्तरीयोपनिषद भृगुवल्ली अनु. १)

समग्र सृष्टि निमित्त कारण परमात्मा से उत्पन्न हुई है और इसका उपादान कारण प्रकृति है और जैसा पीछे उल्लेख किया जा चुका है कि ईश्वर जीव और जगत के कारण ये सब तीन अनादि हैं। सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास में स्वामी दयानन्द सरस्वती की ऐसी ही मान्यता है।

परमात्मा की शक्ति का वर्णन करते हुए उपनिषदों में भी कहा गया है कि सूर्य, चन्द्र, तारागण आदि तथा समस्त प्रकार की विद्युत और अग्नियों में किसी प्रकार का कोई आलोक नहीं है। यह सब सारे ऊर्जा के स्रोत परमपिता परमात्मा की अनन्त सामर्थ्य से उत्पन्न ऊर्जा से ऊर्जान्वित होते हैं।**(कठो. अध्याय २, वल्ली ३)** जैसा कि प्रस्तुत लेख में विवेचना की जा चुकी है कि महाप्रलय की अवस्था में सत्, रज्, तम् अर्थात् इलैक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन, प्रोटॉन में किसी प्रकार का विद्युतावेश नहीं था। 'जैसे शक्ति गृह (Power House) का सम्बन्ध उत्पादक अथवा जनित्र (Generator) से नहीं था ऐसी अवस्था में अणु और परमाणु के अन्दर भौतिक रूप से क्रियाशीलता आ हीं नहीं सकती और उत्पादक या जनित्र (Generator) से सृष्टिकाल में सम्बन्ध जुड़ जाने पर जड़ नित्य और अनादि प्रकृति के अन्दर क्रियाशीलता उत्पन्न हो जाती है।

परमात्मा की सृष्टि विद्या किसी बाजीगर का तमाशा नहीं है जैसा कि वैदिक मत के विरुद्ध कुरान, बाइबिल आदि मतों की मान्यता है कि खुदा ने उंगली उठायी और कहा फया–कुन–फया अर्थात् हो जा और हो गया, किन्तु वेद की मान्यता के अनुसार सृष्टि के निर्माण में भौतिक और रासायनिक नियमों के अन्तर्गत ही सारे कार्य होते हैं। इसी प्रक्रिया के आधार पर ऋग्वेद में सृष्टि उत्पति के विषय में स्पष्ट उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद के इन मंत्रों का विनियोग वैदिक संध्या के मंत्रों में अघमर्षण नाम से हुआ है। संक्षेप में इनका भावार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है–

सब जगत का आधार और पोषण करने वाला और सबको वश में करने वाला परमेश्वर जैसा कि उसके सर्वज्ञ विज्ञान में जगत् के रचने का ज्ञान था और जिस प्रकार पूर्व कल्प की सृष्टि में जगत् की रचना थी और जैसे जीवों के पुण्य पाप से उनके अनुसार ईश्वर ने मनुष्यादि प्राणियों के देह बनाये हैं। जैसे पूर्व कल्प में सूर्य चंद्रलोक रचे थे, वैसे ही इस कल्प में भी रचे है। जैसा पूर्व सृष्टि में सूर्यादि लोकों का प्रकाश रचा था, वैसा ही इस कल्प में रचा है तथा जैसी प्रत्यक्ष दिखती है, जैसा पृथ्वी और सूर्य लोक के बीच में पोलापन अर्थात् आकाश तत्त्व–Ether है। जितने आकाश के बीच में लोक–लोकान्तर को जगदीश्वर ने पूर्व में बनाया था वैसे ही अब भी बनाया है और आगे भी बनायेगा, क्योंकि ईश्वर का ज्ञान विपरीत कभी नहीं होता, किन्तु पूर्ण और अनन्त होने से सर्वदा एक रस ही रहता है, उसमें वृद्धि, क्षय,उल्टापन कभी नहीं होता। इसी कारण से इस पद का ग्रहण किया है।

उसी ईश्वर ने सहज स्वभाव से जगत् के रात्रि, दिवस, घटिका, पल और क्षण आदि को जैसे पूर्व थे वैसै ही रचे हैं। इसमें कोई ऐसी शंका करे कि ईश्वर ने किस वस्तु से जगत् को रचा है? उसका उत्तर यह है कि ईश्वर ने अपने अनन्त सामर्थ्य से सब जगत् को रचा है। ईश्वर के प्रकाश से जगत् का कारण

प्रकाशित होता है और सब जगत् के बनाने की सामग्री ईश्वर के अधीन है। उसी अनन्त ज्ञानमय सामर्थ्य से सब विद्याओं के खजाने वेद शास्त्र को प्रकाशित किया जैसा किया, जैसा कि पूर्व सृष्टि में प्रकाशित था और आगे के कल्पों में भी इसी प्रकार से वेदों का प्रकाश करेगा।

जो त्रिगुणात्मक अर्थात, सत्व, रज और तमोगुण से युक्त है जिसके नाम अव्यक्त,अव्याकृत, सत्, प्रधान और प्रकृति हैं जो स्थूल और सूक्ष्म जगत् का कारण है। सो भी कार्य रूप होकर पूर्व कल्प के समान उत्पन्न हुआ है उसी ईश्वर के सामर्थ्य से जो प्रलय के पीछे हजार चतुर्युगी के प्रमाण से रात्रि कहाती है। सो भी पूर्व प्रलय के समान ही होती है। इसमें ऋग्वेद का प्रमाण है कि– ''जब–जब विद्यमान सृष्टि होती है उसके पूर्व सब आकाश अन्धकार रुप रहता है और उसी अन्धकार में सब जगत् के पदार्थ और सब जीव ढके हुए रहते हैं। उसी का नाम महारात्रि है।''

उसके पश्चात् उसी सामर्थ्य से पृथ्वी और मेघ मण्डल में जो महासमुद्र है, सो पूर्व सृष्टि के सदृश्य ही उत्पन्न हुआ है। उसी समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् संवत्सर अर्थात क्षण, मुहूर्त, प्रहर आदि काल भी पूर्व सृष्टि के समान उत्पन्न हुआ है। वेद से लेकर पृथ्वी पर्यन्त जो यह जगत है, सो सब ईश्वर के नित्य सामर्थ्य से ही प्रकाशित हुआ है। (ऋ १०/१९०/ १–३)

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि ईश्वर जीव और प्रकृति तीनों अज अर्थात् इनका कभी जन्म नहीं होता और न ही यह कभी नष्ट होते हैं इसलिए ये तीनों अनादि और नित्य ये तीन सब जगत् के सृष्टि का कारण हैं इनका कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता फंसता है अथवा मुक्त होता है। परमात्मा न इसमें फंसता ना भोग करता है (ऋ. म.१ सू.१६४ मंत्र २०)। वह सच्चिदानन्द स्वरुप होने से परिपूर्ण है और उसने जड़ प्रकृति के भौतिक व रासायनिक नियमों के अन्तर्गत अपनी विशेष सामर्थ्य से सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय करता है। जबकि जीव का स्वरूप शुध्द, बुद्ध और मुक्त स्वरूप है और प्रकृति जड़। यही उपरोक्त तथ्य शोध का विषय है।*******************

देव दयानन्द

दयानन्द देव का सा दिव्य जीवन जीके तो देखो।
अरे ओ निन्दको! अपनी जरा तसबीर तो देखो।।
हमेशा स्वार्थ हित अपने, पिलाया जहर औरों को,
किसी के भले की खातिर, हलाहल पीके तो देखो।।

भला ये कौन सी खूबी, उधेड़ा सिले टांकों को,
फटा दामन किसी मजलूम का, तुम सी के तो देखो।।
जलाए आशियां हरदम, उजाड़े हैं चमन तुमने,
बहारे गुलसितां खातिर जहां में जीके तो देखो।।

किसी की आंख का तिनका, तुम्हें झट दीख जाता है,
तुम अपनी आंख के भीतर, घुसा शहतीर तो देखो।।
बड़े माहिर हो ऐ नादानो! तिल का ताड़ करने में,
नजारे उल्लुओ! अपनी, जरा बस्ती के तो देखो।।

उजाले से बगावत कर, न हरगिज चैन पाओगे,
अरे! कुछ हस्र अपनी आंखों, की हस्ती के तो देखो।।

अकेला "वेदप्रिय" ही, तुम हजारों के लिए काफी,
जरा बढ़ करके दो–दो हाथ कर कुश्ती के तो देखो।।

– **वेदप्रिय शास्त्री**
सीताबाड़ी, केलवाड़ा
राजस्थान

अयज्ञियो हतवर्चा भवति। (अथर्व. १२.२.३७) – यज्ञ न करने वाले का तेज नष्ट हो जाता है।

स्वास्थ्य क्रान्ति

अपना डॉक्टर आप बनने का जोखि़म उठाएं

– सन्त समीर

इस लेख का शीर्षक पढ़कर पाठक कुछ आश्चर्य में पड़ सकते हैं क्योंकि पत्र–पत्रिकाओं से लेकर टेलीविजन तक में जनसामान्य के लिए यही मशवरा दिया जाता है कि किसी को अपना डॉक्टर ख़ुद बनने की जोखि़म नहीं उठानी चाहिए। लोग बग़ैर किसी डॉक्टरी सलाह के अपनी छोटी–मोटी तकलीफ़ों के लिए मनमर्ज़ी से दवाएं खाकर अक्सर ही जिस तरह से बड़ी–बड़ी तकलीफ़ों को न्यौता दे बैठते हैं, उसे देखते हुए डॉक्टरी सलाह से ही दवा खाने के मशवरे को जायज़ कहा ही जाएगा, लेकिन मैं अगर अपना डॉक्टर आप बनने की सलाह दे रहा हूँ तो उसकी भी जायज़ वजहें हैं।

मेरा मानना है कि लोग अपना डॉक्टर खुद बनने की जोखि़म नहीं उठाते इसीलिए दुनिया में बीमारियाँ बढ़ रही हैं और सेवाभाव वाली चिकित्सा मुनाफ़े का व्यवसाय बना दी गई है। मौजूदा हालात ये हैं कि जिसके पास पर्याप्त धन है वह तो आसानी से चिकित्सा सुविधाएं जुटा लेता है, पर सामान्य आदमी के लिए साधारण बीमारी भी मुसीबतों का पहाड़ लेकर आती है। आदमी ज़्यादा ग़रीब हुआ तो कई बार डॉक्टरी फ़ीस की व्यवस्था न कर सकने के कारण साधारण बुख़ार भी उसके लिए मौत का पैग़ाम बन जाता है। सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था का हाल यह है कि बड़े शहरों में बड़े लोगों के लिए तो बड़ी–बड़ी सुविधाएं हैं, पर गाँव–देहात और छोटे शहरों के लिए बुनियादी सुविधाएं तक नदारद हैं। देश की 90 फ़ीसदी आबादी बुनियादी चिकित्सा सुविधाओं से दूर है। देश के लगभग 25 हज़ार प्राथमिक चिकित्सा केन्द्रों का हाल बुरा ही है और इसीलए प्राइवेट नर्सिंग होमों और अस्पतालों में सुविधा के नाम पर मरीज़ों को बेरहमी से लूटा जाता है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य की हालत यह है कि देश की लगभग एक तिहाई महिलाएं और आधे से भी ज़्यादा बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। लगभग 55 प्रतिशत महिलाओं और 75 प्रतिशत बच्चों में ख़ून की कमी है। देश के हर पंद्रहवें शिशु की एक वर्ष के भीतर ही मौत हो जाती है। औसतन 10 में 4 नवविवाहिताओं को प्रजनन संबंधी कम से कम एक स्वास्थ्य समस्या ज़रूर रहती है। लगभग दो तिहाई महिलाओं को अपनी प्रजनन संबंधी समस्याओं के लिए दवाएं नहीं मिल पातीं। यदि इन समस्याओं का समुचित इलाज नहीं हो पाता तो वे गंभीर बीमारियों से भी ग्रस्त हो जाती हैं। ऐसे में आने वाली सन्तति का स्वास्थ्य भला कैसे बेहतर रह सकता है? सामान्य आबादी के हिसाब से देखें तो औसतन 1 लाख की आबादी वाले छोटे से इलाक़े में भी लगभग तीन हज़ार लोग दमा से, पाँच–छः सौ लोग टी. बी. से, लगभग डेढ़ हज़ार लोग पीलिया से और लगभग 4 हज़ार लोग मलेरिया से ग्रस्त मिल जाएंगे। छोटी–मोटी बीमारियों से तो हर कोई परेशान मिलेगा। आज के समाज में पूरी तरह से एक स्वस्थ आदमी को ढूँढ़ निकालना दुनिया का सबसे बड़ा अजूबा ही होगा।

स्वास्थ्य विज्ञान की ढेरों उपलब्धियों का ढिंढोरा पीटने के बाद भी राष्ट्रीय स्वास्थ्य की यह दशा है तो इसका एक बड़ा कारण यही है कि लोगों का स्वास्थ्य ठीक रखने की ज़िम्मेदारी मुनाफ़े को ही अपना धर्म मान चुके डॉक्टरों, नर्सिंग होमों और अस्पतालों को ही सौंप दी गई है और लोगों को डराया जा रहा है कि वे अपनी चिकित्सा ख़ुद करने का ख़तरा मोल न लें। ऐसे में हो यह रहा है कि जागरूक क़िस्म के लोग भी स्वास्थ्य विज्ञान को सिर्फ़ चिकित्सा व्यवसाय से जुड़े लोगों का ही विषय मानकर इसकी साधारण जानकारी तक करने की ज़रूरत नहीं समझते; और अगर, कभी किसी सामान्य सी तकलीफ़ में डॉक्टर की फ़ीस से बचने के लिए या लापरवाही में ही किसी सुनी–सुनाई दवा का इस्तेमाल कर लेते हैं तो अक्सर इसका दुष्प्रभाव भी उन्हें झेलना ही पड़ जाता है।

वास्तव में स्वास्थ्य विज्ञान की ज़रूरी जानकारी तो हर व्यक्ति को ही होनी चाहिए। सिर्फ़ आहार–विहार की ही समुचित जानकारी हो तो आधी

से ज़्यादा बीमारियाँ पास ही न फटकने पाएंगी। सहज ज्ञान है। उसे किसी अस्पताल की ज़रूरत नहीं पड़ती, लेकिन सृष्टि के सबसे बुद्धिशाली मनुष्य का हाल यह है कि उसे ही नहीं मालूम कि वह क्या खाए, क्या पिए, कैसे सोए, कैसे रहे? यहाँ एक जानने लायक़ महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्राचीन भारतीय व्यवस्था में आज के जैसी स्थिति नहीं थी। हमारी प्राचीन संस्कृति में हर विद्यार्थी के लिए ही स्वास्थ्य शिक्षा अनिवार्य रही है। तब जीवन के अन्य ज़रूरी ज्ञान के साथ आयुर्वेद का भी ज्ञान शिक्षा का ज़रूरी हिस्सा था। आयुर्वेद का अर्थ सिर्फ़ जड़ी–बूटियों से ही नहीं, बल्कि उस समय तक विकसित समूचे चिकित्साविज्ञान से था। तब के साधारण आदमी को भी जड़ी–बूटियों आदि के बारे में इतना गहरा ज्ञान होता था कि ज़्यादातर बीमारियों को वह ख़ुद ही ठीक कर सकता था। किसी विशेषज्ञ वैद्य के पास तो कुछ विशेष परिस्थितियों में ही जाने की नौबत आती थी। स्वास्थ्य के प्रति इस दृष्टिकोण का ही नतीजा है कि प्राचीन सांस्कृतिक धारा छिन्न–भिन्न हो जाने के बावजूद अभी–भी कहीं किसी गाँव–गिराँव में कोई न कोई बूढ़ा–बुज़ुर्ग जड़ी–बूटियों का थोड़ा–बहुत जानकार मिल ही जाता है।

आज भी ज़रूरत इसी बात की है कि कम से कम समाज के जागरूक और पढ़े–लिखे लोगों को स्वास्थ्य विज्ञान का अध्ययन ज़रूर करना चाहिए और आमतौर पर होने वाली अधिकांश बीमारियों का इलाज करने में उन्हें सक्षम होना चाहिए। ऐसा हो तो वे अपना स्वास्थ्य तो ठीक ही रख सकेंगे, अपने परिवार और गाँव–समाज के ग़रीब लोगों की भी बड़ी सेवा कर सकेंगे। एलोपैथी को अगर ख़तरे की पद्धति मानकर छोड़ भी दिया जाय तो प्राकृतिक चिकित्सा, एक्यूप्रेशर, आयुर्वेद और होम्योपैथी–बायोकैमी जैसी चिकित्सा पद्धतियों को तो आसानी से सीखा ही जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा और एक्यूप्रेशर की बुनियादी बातें तो अनपढ़ लोगों को भी सिखाई जा सकती हैं। इतनी जानकारी से ही ढेर सारी तकलीफ़ों से निजात मिल सकती है। जो लोग पढ़े–लिखे और जागरूक क़िस्म के हैं उन्हें आयुर्वेद और होम्योपैथी जैसी पद्धतियों को गंभीरता से सीखना चाहिए। होम्योपैथी तो आधुनिक युग के लिए बहुत ही क्रांतिकारी पद्धति है। यही एक पद्धति ऐसी है जिससे दुनिया के हर पशु–पक्षी की अपने आहार–विहार की गम्भीर आनुवंशिक बीमारियाँ तक बड़ी आसानी से ठीक की जा सकती हैं। इसके अलावा एलोपैथी में जिन बीमारियों में शल्यक्रिया अनिवार्य बताई जाती है उनमें भी लगभग 90–95 फ़ीसदी स्थितियाँ होम्योपैथी में बिना किसी चीड़–फाड़ के ठीक की जा सकती हैं। यह एक आश्चर्यजनक बात है कि कई असाध्य बीमारियाँ इस पद्धति में आसानी से साध्य हो जाती हैं।

यह सब जो मैं कह रहा हूँ तो इसलिए कि इसका मैं प्रत्यक्ष अनुभवकर्ता भी हूँ। बचपन से लेकर कुछेक वर्ष पहले तक मैंने काफ़ी बीमारियाँ भुगती हैं। एलोपैथी की कितनी दवाएं और कितने इंजेक्शन मेरे शरीर में समा चुके हैं इसकी गिनती कर पाना मेरे लिए भी मुश्किल ही है। और तो और, इन दवाओं का दुष्प्रभाव यह हुआ कि मेरे लीवर, फेफड़े, गुर्दे और आँतें बुरी तरह प्रभावित हो गए। यदि अभी तक डॉक्टरों अस्पतालों के ही चक्कर में होता तो एक तो ख़र्च लाखों में पहुँचता ही और तब पर भी मेरे अभी तक जीवित बचे रहने की गारण्टी होती, इसमें भी संदेह ही था। जीवन को संकटग्रस्त जानकर मैंने आत्मबल जुटाया और अपना डॉक्टर आप बनने की शुरूआत की। प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद, एक्यूप्रेशर, होम्योपैथी का मैंने विशेष अध्ययन किया तो आज स्थिति यह है कि मैं अपने स्वास्थ्य की रक्षा तो कर ही रहा हूँ, प्रतिदिन अपने व्यस्त समय में से एक दो घंटे निकालकर लोगों को चिकित्सा परामर्श और होम्योपैथी की निःशुल्क दवाएं भी देता हूँ। इस दौरान शायद उन ग़रीब मरीज़ों को भी उतनी ख़ुशी न हुई होगी जितनी कि उनकी कई असाध्य बीमारियाँ ठीक करने के बाद मुझे हुई हैं।

हर परिवार में न सही तो हर गाँव में ही यदि एक–दो लोग भी इन दुष्प्रभावहीन चिकित्सा पद्धतियों की जानकारी कर लें तो डॉक्टरों अस्पतालों की लूट पर अंकुश लग जाए। एक व्यक्ति का सालाना चिकित्सा ख़र्च यदि औसतन हज़ार रुपये भी मानकर चलें तो दस लोगों के सामान्य परिवार का इस तरह कम से कम दस हज़ार रुपया हर साल बच सकता है। पूरे गाँव के स्तर पर यह रक़म लाखों में पहुँचेगी और इस बचत से गाँव के विकास के कई ज़रूरी काम किए जा सकते हैं। तो निष्कर्ष साफ़ है कि

जागरूक लोग अपना डॉक्टर ख़ुद बनने का जोख़िम जरूर उठाएं लेकिन अधकचरेपन के साथ नहीं। दो–चार दवाओं के ही नाम न रटें बल्कि चिकित्सा विज्ञान के सिद्धान्तों की समझ बनाएं तो 'नीम हक़ीम ख़तरे जान' वाली स्थिति नहीं रहेगी। एलोपैथी दवाओं में विशेष सावधानी की ज़रूरत इसलिए पड़ती है कि इसकी ज़्यादातर दवाएं दुष्प्रभाव भी करती हैं। हालाँकि एलोपैथी का सीखना भी होम्योपैथी वग़ैरह से कठिन नहीं है, पर दवाओं के मिश्रणों के समुचित ज्ञान के बग़ैर इनका इस्तेमाल मनमानी तरीक़े से नहीं ही करना चाहिए। ऐसे में एलोपैथी दवाओं के लिए डॉक्टर की सलाह ज़्यादा ज़रूरी हो जाती है; अन्यथा, इस पद्धति की भी पर्याप्त जानकारी हो तो कोई संकट नहीं है।

इस तरह की सलाह पर अमल करके यदि गाँव–गाँव में लोग चिकित्सा सेवा के काम करने लगें तो एक बड़ी अड़चन यह आएगी कि सरकार इस बात की इजाज़त नहीं देगी। चिकित्साशास्त्र की पढ़ाई के लिए बड़े–बड़े मेडिकल कालेज खुले हैं और बड़ी–बड़ी डिग्रियाँ दी जाती हैं। विज्ञान की पढ़ाई अनिवार्य है। ऐसे में मान लिया गया है कि बिना कालेज की पढ़ाई किए चिकित्साशास्त्र का ज्ञान असंभव है। एलोपैथी की जानबूझकर जटिल बनाई गई पद्धति के लिए इस धारणा को किंचित ठीक मान भी लें तो आयुर्वेद या होम्योपैथी के लिए तो इस तरह के अध्ययन की व्यवस्था सरासर अनुचित ही है। होम्योपैथी के बारे में तोयह ग़ज़ब का सच है कि जिसका भी मनोविज्ञान में, सोच–विचार में, समाजसेवा करने में रुचि हो वह बेहतर चिकित्सक बन सकता है। सिर्फ़ मेडिकल कालेज की डिग्री वालों को ही चिकित्सा क्षेत्र में आने की छूट है तो इसलिए कि यह अब सेवा का क्षेत्र न रहकर धंधा बन गया है और चिकित्सा माफ़िया नहीं चाहते कि व्यक्ति, परिवार या गाँव–समाज अपने स्वास्थ्य की देख–रेख खुद कर ले। लेकिन यदिराष्ट्रीय स्वास्थ्य की विकराल होती समस्याओं पर क़ाबू पाना है, तो जो भी लोग सेवाभाव से चिकित्सा का काम करना चाहते हैं, उनके लिए बिना कालेज की डिग्री की अनिवार्यता के भी चिकित्साशास्त्र की पढ़ाई की सहूलियत सरकारों को देनी चाहिए। वैसे सरकारी सहूलियत न भी मिले तो भी हर जागरूक व्यक्ति को प्राकृतिक, आयुर्वेदिक, एक्यूप्रेशर, होम्योपैथी आदि में से एक या एकाधिक पद्धतियों की जानकारी करके कम से कम अपना डॉक्टर ख़ुद बनने का पुरुषार्थ तो करना ही चाहिए। सम्पूर्ण स्वास्थ्य का सपना पूरा होगा तो कुछ इसी तरह। ******

संगठन के मंत्र कोई ले गया

संगठन के सूक्त हम पढ़ते रहे,
संगठन के मंत्र कोई ले गया।
संगठन के गीत हम गाते रहे,
संगठन का तंत्र कोई ले गया।।

प्रेम से मिलकर के चलना था हमें,
हम अकेले स्वार्थ वश चलते रहे।
सम्पदा की लालसा मन में लिए,
द्वेष की दावाग्नि में जलते रहे।
बन न पाए आर्य सच्चे हम कभी,
बुद्धि से सुविचार कोई ले गया।।

एक जैसा ज्ञान था हमको मिला,
चित्त–मन भी एक जैसे थे मिले।
किन्तु रख मतभेद मन–मस्तिष्क में,
हम बढ़ाते ही रहे शिकवे–गिले।
एक–सा संकल्प बन पाया नहीं,
एकता के सूत्र कोई ले गया।।

संगठन की रीति कुछ ऐसी गढ़ी,
पूर्वजों का पंथ ही बिसरा दिया।
कलह और कटुता बढ़ाई इस तरह,
पास आए मीत को ठुकरा दिया।
संगठन का ज्ञान फैलाते रहे,
संगठन का श्रेय कोई ले गया।।

आर्य हम करने चले थे विश्व को,
भग्न माला सी बिखर के रह गए।
ओम के बदरंग झंडे के तले,
हाय ! हम खुद ही सिमट के रह गए।
छिप गया सत्यार्थ रवि जब भाग्य से,
'वेद' की पहचान कोई ले गया।।

– वेदकुमार दीक्षित
देवास (म.प्र.)

क्या उपनिषद् वेदों के विरोधी हैं? (डॉ. अम्बेडकर भ्रमभंजन)

डॉ. अम्बेड़कर ने अपनी रिड्डल ऑफ हिन्दूज्म में उपनिषदों को वेदों के विरोधी घोषित करते हुए आंठवी पहेली में लिखा है – "**उपनिषदों की विषयवस्तु वेदों से भिन्न हैं।**"– हिन्दू धर्म की पहेलियाँ, आठवी पहेली, पृष्ठ 72 आए तो सोने पर सुहागे वाली उक्ति डॉ. साहब का ये कथन सत्य नहीं है कि उपनिषद् और वेदों की विषयवस्तु में भेद है। अपितु जिस ब्रह्म को वैदिक ऋचाएँ कहती है, उसी ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन उपनिषद् करते हैं। स्वयं ऋक्सर्वानुक्रमणिकार ने वेदों के समस्त मंत्रों का देवता अर्थात् विषय वस्तु ओमकार ब्रह्म को माना है – ओंकारः सर्वदेवत्यः पारेमेष्ठ्यो वा ब्राह्मो दैव आध्यात्मिकः – का.ऋ. 1.12। इसी को वेदों में –

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते।।
(ऋग्वेद – 1/164/39), निरुक्त 13

जिस व्यापक अविनाशी सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर में सब विद्वान् और पृथिवी सूर्य आदि सब लोक स्थित है, कि जिसमें सब वेदों का तात्पर्य हैं उस ब्रह्म को जो नहीं जानता है, वह ऋग्वेदादि से कभी भी कुछ सुख को प्राप्त नहीं हो सकता। इस मंत्र के द्वारा सभी मंत्रों का मुख्यार्थ परमात्मा में बताया है। इसी प्रकार ईशोपनिषद् भी यजुर्वेद के 40 वें अध्याय से है जिसमें ब्रह्म विद्या का वर्णन है। अथर्ववेद में कई सूक्त और पुरुष सूक्त आदि सीधे सीधे ब्रह्म विद्या का प्रतिपादन करते हैं। अतः डॉ. अम्बेडकर का उपनिषद् और वेदों को परस्पर विरोधी बताना मिथ्या हैं। यदि हम दुर्जनतोष न्याय से डॉ. अम्बेडकर की बात मान भी ले कि उपनिषदों और वेदों की विषय वस्तु में अंतर है तो भी उनकी बात सही नहीं, क्योंकि जैसे रसायन शास्त्र और भौत्तिक शास्त्र के विषय वस्तु में अंतर होता है किन्तु दोनों एक दूसरे के विरोधी नहीं होते हैं। उसी प्रकार उपनिषद् और वेद भी विरोधी नहीं।

ड़ॉ. अम्बेडकर लिखते हैं – "उपनिषद् वेदों का खंडन करते हैं।" – वही, पृष्ठ.73

ये अम्बेडकर जी का भ्रम है। क्योंकि उपनिषदों के रचयिता वही ऋषि है जिन्होंने वेद मंत्रों के अर्थों का दर्शन किया था। अधिकांश उपनिषद् शाखाओं और ब्राह्मण ग्रंथों के भाग है जैसे – 'केनोपनिषद'जैमिनि ब्राह्मण (तवलकार) ब्राह्मण का अंश है। 'बृहदारण्यक उपनिषद' शतपथ ब्राह्मण का अंश है। 'छान्दोग्योपनिषद छान्दोग्य' ब्राह्मण का भाग है। यदि ब्राह्मण ग्रंथ पर विचार किया जाये तो ब्राह्मण शब्द बृह् बृहणे धातु से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है व्याख्यान अर्थात् वृद्धि। अतः ब्राह्मण ग्रंथ वे ग्रंथ है जो – 'संहितोक्तमन्त्राणां विनियोगस्य शब्दशः तात्त्विकं व्याख्यानं वर्तते' अर्थात् जो वेद मंत्रों के विनियोग और तात्विक अर्थ का व्याख्यान करे। अतः उपनिषद् ब्राह्मण ग्रंथ का भाग होने से वेद प्रतिपादित ब्रह्म का ही व्याख्यान करता है, वेद का विरोध नहीं।

न्याय दर्शन के वात्सायायन भाष्य में भी शास्त्रों के कर्ता ऋषियों को वेद मंत्र द्रष्टा कहा गया है। –

द्रष्टृप्रवक्तृसामान्याञ्चानुमानम्। य यवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवायुर्वेदप्रभृतीनामित्यायुर्वेदप्रामाण्यमनुमातव्यमिति।
– न्याय. वा.भा. 2.1.69

अर्थात् जो आयुर्वेदादि ग्रंथों के रचयिता है, वे ही वेद विषयों को देखने वाले हैं। अतः उपनिषदों का वेदों से विरोध बताना अम्बेडकर साहब की अल्प बुद्धि है। उपनिषद् वेदों का खंडन करते हैं, इसलिए ड़ॉ. अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक में उपनिषदों के कुछ प्रमाण दिये हैं – वही. पृष्ठ 73

मुण्डकोपनिषद का कथन है–

1.सभी देवताओं में सबसे पहले विश्वनियंता, जगतपालक ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन्होंने अपने ज्येष्ठतम पुत्र अथर्व को ब्रह्मविज्ञान की शिक्षा दी जो समस्त ज्ञान का आधार है। 2. अथर्व ने यह ज्ञान, जो उन्हें ब्रह्मा से मिला था, अंगिस को दिया; उन्होंने भारद्वाज की संतति सत्यवाह को समझाया जिन्होंने किंवदंतियों के अनुसार यह ज्ञान अंगिरस को दिया। 3. शौनक पूर्ण शिष्टाचार पूर्वक अंगिरस के पास गए और पूछा– "हे आदरणीय ऋषि, वह कौन सा साधन है जिससे इस सम्पूर्ण जगत का ज्ञान हो सकता है।" 4. अंगिरस ने उत्तर दिया, ये दो विधाएं पवित्र विद्याओं में इस प्रकार जानी जाती है, एक श्रेष्ठ और दूसरी अश्रेष्ठ। 5. अश्रेष्ठ विद्याएं हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, स्वाराघात, आध्यात्मिक व्याकरण, भाष्य, पिंगल ओर खगोल शास्त्र। श्रेष्ठ विद्या अक्षय, अनित्य है, जिसका आशय उपनिषदों से है।

इस प्रमाण के द्वारा अम्बेडकर जी ने बताया है कि उपनिषद वेदों को अश्रेष्ठ कहते हैं किन्तु स्वयं को श्रेष्ठ, इस प्रकार उपनिषदों द्वारा वेदों का विरोध किया गया। इस सम्बन्ध में उपनिषद् का मूलपाठ देखना चाहिये – **''तस्मै स होवाच द्वे विद्ये वेदितव्य इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चौवापरा च।''**

– मुण्डकोपनिषद 1.4

अर्थात् शौनक के लिए अङ्गिरा ने कहा कि दो विद्याएँ जानने योग्य है – परा विद्या और अपरा विद्या। ''त्तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः....अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।''– मु.उ. 1.5

अर्थात् उनमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष आदि अपरा विद्या है और जिससे ब्रह्म जाना जाये, वह परा विद्या है।

इस मूल को पाठ देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अम्बेडकर जी का श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ विद्या लिखना गलत है जबकि यहां परा विद्या और अपरा विद्या शब्द है। अतः उपनिषद् वेदों को अश्रेष्ठ कहते हैं ये बात गलत सिद्ध हो जाती है।

किन्तु यहां एक प्रश्न अवश्य है कि वेद भी ब्रह्मविद्या का उपदेश करते हैं तो भी चारों संहिताओं को यहां पराविद्या क्यों कहा है? अम्बेडकर ने चूंकि विदेशियों की पुस्तकों से ये सब प्रमाण दिये हैं इसलिए उन्होनें अर्थ तो गलत दिया ही है, साथ में ऐसी निराधार आक्षेप भी किये थे। यदि वे इस उपनिषद् में कम से कम शांकरभाष्य ही देख लेते तो इस प्रकार की शङ्का का समाधान वही मिल जाता। शांकरभाष्य में कहा है –

नः, वेद्यविषयविज्ञानस्य विवक्षितत्वात्।
उपनिषद्वेद्याक्षरविषयं हि विज्ञानमिह परा विद्येति
प्राधान्येन विवक्षितं नोपनिषच्छब्दराशिः।।

– मुण्डकोपनिषद पर शांकरभाष्य 1.5

अर्थात् यहां परा विद्या से वेद्यविषयक ज्ञान बतलाना अभीष्ट है। यहां प्रधानता से यही बतलाना इष्ट है कि उपनिषद्वेद्य अक्षरविषयक विज्ञान ही परा विद्या है, उपनिषद की शब्द राशि नहीं। और यहां वेद शब्द से सर्वत्र शब्दराशि कही गयी है। आगे शंकराचार्य लिखते हैं –

शब्दराश्यधिगमेपि यत्नान्तरमन्तरेण गुर्वभिगमनादिलक्षणं वैराग्यं च नाक्षराधिगमः सम्भवतीति पृथक्करणं ब्रह्मविद्यायाः परा विद्येति कथनं चेति।

– वही. 1.5

अर्थात् शब्दसमूह का ज्ञान हो जाने पर भी गुरूपसत्ति आदिरूप प्रयत्नान्तर तथा वैराग्य के बिना अक्षरब्रह्म का ज्ञान नहीं हो सकता है। इसीलिए ब्रह्मविद्या का पृथक्करण और वह परा विद्या है, ऐसा कहा गया है।

इसे सरल शब्दों में समझें तो वेद, उपनिषद् आदि का शब्द रूप में ज्ञान मात्र ही अपरा विद्या है, किन्तु इनमें बतलाये ब्रह्म प्राप्ति के साधनों का प्रयोग करना, ईश्वर का चिंतन, मनन, उपासना, ध्यानादि करना परा विद्या है। अतः जब तक कोई विद्या केवल मात्र शब्द रूप में ही विद्यमान है वो अपरा विद्या है किन्तु यदि उसको जीवन में धारण किया जाये और ब्रह्म प्राप्ति की जावे तो वही परा विद्या अर्थात् ब्रह्म विद्या है। इसलिए यहां निन्दा जैसे प्रकट होने वाले वाक्य वास्तव में निन्दा न हो कर, वेदों के स्तुतिरुप भूषण है।

अतः उपनिषदों को वेदों का विरोधी कहना अम्बेडकर जी की अज्ञानता मात्र ही कही जाएगी। आश्चर्य की बात है कि उन्होने ऐसी पुस्तक को लिखते समय केवल विदेशी व्याख्याएँ ही देखी, शांकरभाष्य आदि अन्य भारतीय विद्वानों की वृत्तियों को नहीं देखा, जो उनकी असजगता का प्रमाण है। इस विषय में आगे डॉ. अम्बेडकर द्वारा अन्य उपनिषदों के द्वारा वेदों पर लगाये आक्षेपों का खंडन करेंगे।******

क्रमशः ....

– वैदिक प्रहरी

संदर्भित ग्रंथ एवं पुस्तकें –

(1) ईशादि नौ उपनिषद (शांकरभाष्य सहित) – गीताप्रेस गोरखपुर

(2) न्याय दर्शन वात्सायायन भाष्य – अनु. ढुण्ढिराजशास्त्री

(3) निरुक्त – अनु. भगवद्दत्त जी

(4) कात्यायनऋक्सर्वानुक्रमणिका – सम्पा. विजयपाल विद्यावारिधि।

वेद विवेचना

– वेदप्रिय शास्त्री

वैदिक वाङ्मय में 'वेद' शब्द दो प्रकार का मिलता है। एक आद्युदात्त और दूसरा अंतोदात्त। इनमे से प्रथम जो आद्युदात्त है, वह ज्ञान का पर्याय है! यह 'विद् ज्ञाने' धातु से निष्पादित है। आचार्य पाणिनी ने इसे वृषादि गण मे पढ़ा है। दूसरा वेद शब्द, जो अंतोदात्त है, वह दर्भमुष्टि से निर्मित एक यज्ञीय उपकरण का पारिभाषिक नाम है।

आद्युदात्त 'वेद' शब्द ऋक्, यजु, साम और अथर्व संज्ञक मंत्र संहिताओं के साथ संयुक्त होकर मंत्र संहिता मात्र के लिए लोक में विख्यात है। केवल 'वेद' कहने मात्र से इन्हीं का बोध होता है। तात्पर्य यह है कि मंत्र संहिताओं की ही वेद संज्ञा है।

कालांतर मे यही वेद शब्द अनेक ज्ञान के आधारभूत ग्रन्थों के साथ जुड़कर आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद, नाट्यवेद इत्यादि के रूप में दृष्टिगोचर होता है। परंतु उक्त सभी ग्रन्थों का मूल वेद संहिताएँ ही प्रसिद्ध है। अतः इन्हें उपवेद कहा जाता है और इनकी प्रामाणिकता वेदों के ही ऊपर आधारित है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद , सामवेद और अथर्ववेद ये चार मंत्र संहिताएँ ही वेद है– यह मान्यता सर्व सम्मत रही है। सृष्टि के आदि से ही सभी ऋषि, महर्षि व विद्वान उक्त मंत्र राशि को अपौरुषेय, नित्य और स्वतः प्रमाण मानते और कहते आए हैं। परंतु इस 'अपौरुषेय' शब्द को लेकर मतभेद होने से वैदिकों मे दो पक्ष हो गए। एक पक्ष का मत है की वेद का कर्ता कोई भी नहीं है, वे अनादि और नित्य है। इस पक्ष के लोग ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता नहीं मानते, जगत को अनादि अनंत मानते हैं, सृष्टि व प्रलय को भी नहीं मानते। दूसरे पक्ष के मत मे ईश्वर सृष्टि–प्रलय का कर्त्ता और मंत्र संहिता रूप वेदों का प्रकाशक है। प्रत्येक सृष्टि की आदि मे वह मनुष्यों को वेद का ज्ञान देता है। ईश्वर नित्य है अतः उसका ज्ञान वेद भी नित्य है, इसलिए वेद स्वतः प्रमाण है। जगत मे उत्पन्न शरीरधारी कोई पुरुष वेदों का कर्त्ता नहीं है, इसलिए वेद अपौरुषेय कहलाते हैं आदि। परंतु दोनों ही पक्ष इस बात मे एकमत है की मंत्र राशि ही वेद हैं, वे अपौरुषेय, नित्य और स्वतःप्रमाण है।

ईश्वरवादी वैदिकों के अनुसार सृष्टि की आदि मे जो मनुष्य सर्व प्रथम होते हैं, वे बिना माता–पिता के संयोग के पृथ्वी के गर्भ में से उत्पन्न होते हैं। इसे अमैथुनी सृष्टि कहते हैं। ये मनुष्य शुद्ध, पवित्र, सतोगुण–प्रधान, निर्मल बुद्धि युक्त, राग द्वेष रहित, साक्षात कृद्धर्मा, समाहितचित्त योगी होते हैं। इन्हीं मे से चार मुख्य ऋषियों को परमेश्वर ने मंत्र प्रदर्शित किए। अग्नि ऋषि को ऋक्, वायु ऋषि को यजुः, आदित्य ऋषि को साम और अंगिरा ऋषि को अथर्व मंत्र राशि सुनाई पड़ी, जिसे सुनकर वे भी बोलने लगे। मंत्र राशि सुनी जाने के ही कारण श्रुति कहलाई। उक्त ऋषियों ने ध्यान योग से बुद्धि मे मंत्रराशि को देखा, इसीलिए वे मंत्रदृष्टा कहे जाते हैं। ईश्वरवादियों के अनुसार ज्ञान और भाषा दैवी प्रेरणा से ही मनुष्य को प्राप्त होते हैं, मनुष्य के वश की बात नहीं कि वह इन्हें बना सके।

इस उक्त मान्यता पर आक्षेप करने वाला तीसरा पक्ष भी है, जो वेदों को ईश्वर की देन न मानकर ऋषियों की देन मानता है। इसके अनुसार ऋषियों ने ही मंत्र बनाए हैं, भाषा भी उन्होने ही बनाई है और ज्ञान भी उन्होने ही दिया है, ईश्वर ने नहीं। अतः

ऋषि लोग मंत्रदृष्टा नहीं, मंत्रकर्ता है। आज भी जो वेद की शाखाएँ है, वे किसी न किसी मनुष्य के नाम से प्रचलित है। यथा– शाकल, शौनक, तैत्तिर, पैप्पलाद, माध्यन्दिन, कौठुम आदि। इसके साथ ही वेद मंत्रों मे अनित्य पदार्थों, पुरुषों, राजाओं और ऋषियों के नाम मिलते है। यथा– गंगा, यमुना, सुदास, देवापि, शांतनु, वशिष्ठ, भरद्वाज, जमदग्नि आदि। इससे विदित होता है की इनके समय मे या इनके पश्चात ही वेदमंत्र बनाए गए अतः वे अपौरुषेय और नित्य नहीं है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती भी ईश्वरवादी वैदिकों मे से ही है। वे भी वेदों को ईश्वरीय ज्ञान, अपौरुषेय (अमनुष्यकृत) नित्य और स्वतः प्रमाण मानते हैं और मंत्र संहिताओं को ही मूल वेद स्वीकारते हैं, अन्य ब्राह्मणों, शाखाओं को नहीं। उनके अनुसार ब्राह्मण, शाखादि सब मनुष्यकृत हैं अतः वे निर्भ्रांत और स्वतःप्रमाण के योग्य नहीं हो सकते। वे अनित्य हैं और वेदानुकूल होने पर ही उनका प्रमाण माना जाना चाहिए। उनका कहना है कि ऋषि या तो मंत्रदृष्टा होते हैं, या फिर मन्त्रार्थदृष्टा। कोई भी ऋषि मंत्रकर्ता नहीं है।

स्वामी दयानन्द जी की यह मान्यता उनकी स्वकल्पित नहीं है, अपितु ब्रह्मा से लेकर जैमिनी मुनि पर्यंत सभी वैदिकों की यही मान्यता रही है। इसपर होने वाले आक्षेप भी नए नहीं है, बहुत प्राचीन है। वैदिक विद्वानों ने सभी आक्षेपों के उत्तर दे दिये हैं। अब तक ऐसा एक भी आक्षेप शेष नहीं है जिसका उत्तर वैदिक विद्वानों द्वारा नहीं दिया गया है। वैदिक वाङ्मय के अध्ययन से यह सब जाना जा सकता है।

उन्हीं पुराने आक्षेपों, और आरोपों और प्रहारों को एकत्र करके वर्तमान मे कुछेक लोगों ने पुनः परोसना प्रारम्भ कर दिया है और ऐसा समझते हैं कि हमने बहुत बड़ा अन्वेषण और अनुसंधान कर डाला है, स्वामी दयानन्द को झूठा सिद्ध करने की धुन मे सारी आर्ष परंपरा को ही मिथ्यावादी कहने का दुस्साहस दिखाया है। परंतु ये स्वयं नालायक, अर्थात अयोग्य है। इनकी नीयत ठीक नहीं है, यह इनके लेखन से स्पष्ट विदित हो रहा है।

वेदों के ऊपर आक्षेप और प्रहार करने का कार्य नया नहीं, अति प्राचीन है।

नास्तिक चरवाक, वाममार्गी, आभाणक, बौद्ध, जैन, विदेशी और स्वदेशी मत–मजहब, वेदों पर कार्य करने वाले अनेक विदेशी तथाकथित विद्वान आदि लोगों ने अपनी पूरी शक्ति लगा कर वेदों और वैदिक मान्यताओं पर आक्षेप और प्रहार किए हैं। किसी ने उन्हें भाण्ड, धूर्त और निशाचरकृत कहा तो किसी ने गड़रियों के गीत कहा। किसी ने आत्मा को नहीं माना, किसी ने परमात्मा को नहीं माना। कोई लोक को नहीं मानता तो कोई परलोक को नहीं मानता इत्यादि। परंतु इन सबके उत्तर वैदिक विद्वानों द्वारा तर्क, युक्ति और प्रमाण पुरस्सर दिये जा चुके हैं। वैदिक षड्दर्शनो के अध्ययन से यह सब विदित हो जाता है।

जहां तक वेदों की अपौरुषेयता और नित्यता पर आक्षेप का प्रश्न है सो इसे जैमिनी मुनि ने अपने पूर्व मीमांसा ग्रंथ के प्रथमाध्याय मे ही सभी पूर्व पक्षियों का समाधान करते हुए सिद्ध किया है कि शब्द नित्य है, शब्द और अर्थ का संबंध नित्य है, वेद भी अपौरुषेय और नित्य है। उत्तर मीमांसा अर्थात वेदान्त दर्शन के प्रारम्भ मे ही महर्षि व्यास ने ब्रह्म अर्थात परमेश्वर को शास्त्र की योनि कहकर वेदों को ईश्वर प्रदत्त अपौरुषेय और नित्य सिद्ध किया है।

स्वामी दयानन्द के इस कथन पर कि '**केवल मंत्र संहिता ही अपौरुषेय, नित्य और स्वतःप्रमाण है**', पं0 सत्यव्रत सामश्रमी ने अपने ऐतरेयालोचन ग्रंथ के पृष्ठ 127 पर लिखा है की 'ऐसी कौन सी मंत्र संहिता है, जो शाखा नाम से रहित है जिसे महात्मा दयानन्द के अनुसार मूल वेद माना जावे–यह हमारी समझ मे नहीं आ रहा।

तात्पर्य यह है कि वर्तमान मे सभी वेद संहिताएँ किसी न किसी शाखा के ही नाम से प्रसिद्ध हैं। अतः मूल वेद कौन सी है– उसको कैसे जाना जाय? हमारा निवेदन है कि स्वामी दयानन्द ने इस जटिल समस्या का भी समाधान किया है। उन्होने जिन शाखा नाम से व्यवहृत संहिताओं को मूल वेद स्वीकार किया है, उनमे ऋग्वेद की शाकल, यजुर्वेद की माध्यंदिन, सामवेद की कौथुम संहिता है। अथर्ववेद की उस समय शौनक संहिता ही उपलब्ध थी अतः उसे ही ग्रहण कर लिया। इसका कारण यह था की शाकल्य ने अपनी संहिता के मंत्रों का केवल पद पाठ ही किया है, मंत्रों मे कोई घाल मेल नहीं किया। अतः स्वामी

दयानन्द ने उसका सम्पूर्ण मंत्रभाग स्वीकार कर ऋग्वेद संहिता बना दिया। यजुर्वेद की सभी प्राप्य शाखाओं मे से माध्यन्दिन संहिता ही ऐसी थी जिसमे मंत्रभाग पूर्णतः सुरक्षित रखा गया, ब्राह्मण भाग का सम्मिश्रण नहीं था। माध्यन्दिन ने कर्मकांडीय सुविधा के लिए अनेक स्थानो पर कुछ प्रतीकें जोड़ी थी। बस

इसीलिए वह माध्यन्दिन संहिता कहलाई। स्वामी दयानन्द ने उसकी प्रतीकें स्वीकार नहीं की। केवल मंत्र लेकर मूल यजुर्वेद प्राप्त कर लिया।

सामवेद की कौठुम और राणायनीय दो शाखाएँ प्राप्त थी। दोनों के मंत्रों मे कोई भेद नहीं, केवल गायन के ढंग मे अंतर था। अतः उन्होने कौठुम शाखा को ग्रहण करना उचित समझा। इस पर आगे भी अन्वेषण कार्य होना चाहिए।

जहां तक वेदों मे आए अनित्य पदार्थों, स्थानों और व्यक्तियों के नामों या अनित्य इतिहास होने के आक्षेप की बात है, सो इस विषय पर स्वामी दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका मे पर्याप्त प्रकाश डाला है।

अनेक वैदिक विद्वानों ने भी इस विषय पर अनेक बड़े ग्रंथ लिखे हैं। इनमे पं0 ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, युधिष्ठिर मीमांसक, शिवशंकर शर्मा, आचार्य वैद्यनाथ, डॉ0 रघुवीर वेदालंकार आदि के नाम उल्लेखनीय है। सबने सप्रमाण सिद्ध किया है की वेद मे अनित्य इतिहास नहीं है। पूर्व मीमांसा प्रथमाध्याय मे स्वयं जैमिनी मुनि ने —

1— वेदान्श्चौके सन्निकर्ष पुरुषाख्या।। 1—1—27

2— अनित्यदर्शनाच्च ।। 1—1—28

इन दो सूत्रों से पूर्वपक्ष रखकर

1— उक्तं तु शब्द्पूर्वत्वं ।। 29

2— आख्या प्रवचनात् ।। 30

3— परं तु श्रुति सामान्यम् ।। 31

इन तीन सूत्रो द्वारा समाधान प्रस्तुत किया है, जिसे वहीं देखना चाहिए।

भाषा और ज्ञान को मनुष्यकृत कहने वालों से हमारा निवेदन है की आदि मानव जो सर्वप्रथम उत्पन्न हुए उनमें यदि बोलने का सामर्थ्य था तो शब्द भी अवश्य होंगे। यदि शब्द नहीं थे तो वे गूंगे होंगे। इसी प्रकार जब उनके कान थे तो ध्वनियाँ भी होंगी, जिनको वे सुनते थे। यदि नहीं सुनते थे तो बहरे होंगे। शब्द दो ही प्रकार के होते हैं, एक ध्वन्यात्मक, दूसरे वर्णात्मक। बोलना और समझना वाक् शक्ति है, आदि मानव उससे युक्त होना चाहिए। समझना और विचार करना— यह ज्ञान का द्योतक है और ज्ञान भाषा के विना नहीं होता। अतः विना ज्ञान के भाषा और विना भाषा के ज्ञान नहीं रह सकते। अतः यह मानना ही पड़ेगा कि ज्ञान और भाषा आदि मानव के साथ ही आए थे। ये उन्हें दैवी प्रेरणा या ईश्वरीय व्यवस्था से ही प्राप्त हुए थे। यही वेद हैं और अपौरुषेय है। भाषाओं का जन्म इसी आदि भाषा मे ही होता है। ध्यान रहे, संसार की समस्त भाषाएँ भाषा विकास का परिणाम नहीं है, ह्रास का परिणाम है। भाषा संकोच और अपभ्रंश होकर बढ़ती जाती है, कई बार तो मूल शब्द लुप्त हो जाता है और उसके अनेक अपभ्रंश प्रचलित रहते हैं। समस्त भाषाओं का यही हाल है। वे किसी एक मूल भाषा से ही अपभ्रंश होकर बनी है। वही आदि भाषा वेद वाणी है। इसीलिए सभी ऋषि मुनियों की सर्व सम्मत मान्यता रही है कि वेद अपौरुषेय, स्वतःप्रमाण ईश्वरप्रदत्त ज्ञान है।

उक्त मंत्र संहिताओं की वेद संज्ञा होने पर तो किसी को आपत्ति नहीं है। सर्व सम्मत है। परंतु कुछ लोग ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद मानते और उनके भी स्वतः प्रमाण होने का आग्रह करते हैं। प्रमाण के रूप मे वे एक सूत्र उपस्थित करते हैंः— मंत्र **ब्रह्मणयोर्वेदनामधेयम**

ये लोग इसे कात्यायनकृत श्रौत सूत्र कहते हैं, परंतु यह कात्यायनीय श्रौत सूत्र मे नहीं मिलता। हाँ, कात्यायनकृत कहे जाने वाले प्रतिज्ञा परिशिष्ट मे पाया जाता है, किन्तु यह प्रतिज्ञा परिशिष्ट श्रौत सूत्र न होकर प्रतिशख्य से सम्बद्ध है। अतः विद्वान इसे कात्यायनकृत नहीं मानते। एक और महत्त्वपूर्ण विचारणीय बात यह है कि यह सूत्र केवल

कृष्णयजुर्वेदीय श्रौत सूत्रों मे ग्रहण किया गया है। यथा आपस्तम्ब, सात्यषाढ, बौधायन आदि श्रौत सूत्रों मे उपलब्ध है। परन्तु उनके भी परिभाषा प्रकरण मे पठित है। शुक्ल यजुर्वेद, ऋग्वेद और सामवेद से संबन्धित किन्ही श्रौत सूत्रों मे उपलब्ध नहीं होता। इससे विदित होता है कि यह इन्हीं कृष्णयजुर्वेदियों का ही बनाया हुआ है। परन्तु अनेक आचार्यों ने इसे स्वीकार नहीं था, ऐसे प्रमाण भी उपलब्ध है। इसी सूत्र पर अपनी अपास्तम्ब श्रौतसूत्र की व्याख्या करने वाले हरदत्त और उससे भी पूर्व धूर्तस्वामी ने टिप्पणी दी है कि,

'कैश्चिन्मंत्राणामेव वेदत्वमाख्यातम्'। अर्थात किन्हीं आचार्यों ने केवल मंत्रों का ही वेदत्व कहा है। इससे सिद्ध है कि प्राचीन आचार्य केवल मंत्रों की ही वेद संज्ञा स्वीकार करते थे और इस सूत्र रचना के पश्चात भी उन्होने इस परिभाषा को अंगीकार नहीं किया था। शुक्ल यजुर्वेदीयों आदि के यहाँ मंत्रराशि पृथक है और ब्राह्मण पृथक है, अतः इनके आचार्यों को इस ऐसे सूत्र की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। उन्हें यह संदेह ही न था कि कौन भाग मंत्र है और कौनसा भाग ब्राह्मण है। परन्तु कृष्ण यजुर्वेदियों ने अपनी संहिताओं, शाखाओं मे मंत्र और ब्राह्मण का घालमेल कर रखा है, इसीलिए उन्हें ऐसे सूत्र की आवश्यकता हुई। ध्यान देने की बात है कि उक्त सूत्र जहां भी है, परिभाषा प्रकरण मे ही पठित है। पारिभाषिक संज्ञाओं की रचना तभी की जाती है जब वे लोक मे प्रसिद्ध न हो अथवा अन्य शास्त्रों मे अन्य अर्थों मे प्रसिद्ध हों। जैसे कि पाणिनि मुनि रचित गुण, वृद्धि आदि संज्ञाएं और योग मे प्रयुक्त संयम आदि। परंतु ये संज्ञाएं उन्हीं ग्रन्थों मे प्रमाण मानी जाती हैं, जिनके लिए बनाई गयी होती हैं। अतः मंत्र और ब्राह्मण की वेद संज्ञा भी कृष्ण यजुर्वेदियों के याज्ञिक कर्मकांड तक ही सीमित रहेगी, सर्वत्र ग्रहीत नहीं होगी। जिनके श्रौत सूत्रों मे पठित है, वहीं मान्य होगी, सर्वत्र नहीं।

जहां तक ब्राह्मण भाग की प्रामाणिकता और अपौरुषेयता का प्रश्न है, सो वह अपौरुषेय तो है ही नहीं, क्योंकि वे तो कर्मकांड के आचार्यों द्वारा किए गए मंत्र विनियोगों की व्याख्या और याज्ञिक प्रक्रिया के विधिप्रदर्शन है। अतः पौरुषेय है। साथ ही इनमे समय–समय पर विनियोजित मंत्रों और प्रक्रियाओं मे फेरफार और उलट–पलट भी किया जाता रहा है और इनमे अनेक अवांछित और अनुचित प्रक्षेप भी घुसेड़ दिये गए हैं। अतः वे वेदों की भांति प्रामाणिक भी नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थों मे विभिन्न समयों मे हुए राजाओं, ऋषियों, आचार्यों तथा अन्य मनुष्यों के जीवन मे घटित घटनाओं का उल्लेख मिलता है अर्थात् अनित्य इतिहास विद्यमान है। इसलिए उनकी स्वतःप्रामाणिकता मानना दुराग्रह मात्र ही है। हाँ, उनके वेदानुकूल भाग अवश्य प्रमाण योग्य होंगे। छल और वितंडा का आश्रय लेकर सत्य का हनन या उसपर प्रहार करना सज्जन पुरुषों का कार्य नहीं हो सकता।*******

शरीर को तन्दुरुस्त और उम्रदराज होने के लिए नौकासन करें

विधि – चटाई पर पीठ के बल उतान लेट जाइए। सांस भरते हुए दोनों पैरों को देढ़ फुट की ऊंचाई तक ऊपर उठाइए। फिर दोनों हाथों को लम्बत फैलाते हुए सिर व धड़ को भी ऊपर की ओर उठाइए। ऐसे में केवल कुल्हा ही जमीन को छूता रहेगा। यह स्थिति एक नौका के समान हो जाती है। दोनों हाथ लम्बत पेट और जांघों के ऊपर एक फिट की ऊंचाईं पर रहेंगे। सांस इस वक्त आराम से जितनी देर तक रोक सकें, रोके रहें। इस स्थिति में दो से चार मिनट तक रहा जा सकता है। फिर श्वास को निकालते हुए पूर्व स्थिति में आ जाइए। इस आसन को चार बार तक किया जा सकता है।

लाभ – पेट, आंत और पैर निरोग बनते हैं। सेहत को अच्छी रखने का बेहतर आसन है। कमर और रीड़ में लचकपन आता है। स्नायु तन्दुरुस्त बनते हैं।

आहार – हल्का आहार लेना चाहिए। जितनी भूख हो उससे कम ही खाएं। मांस, मदिरा और फास्ट फूड से बचें।

विशेष – प्राणायाम और हल्का व्यायाम के बाद ही यह आसन करें। आसन के पहले ही स्नान कर लें। या आसन के एक घंटे बाद स्नान करें।

भारतमाता के वीर सपूत : चंद्रशेखर आजाद

– प्रांशु आर्य

जला अस्थियाँ बारी–बारी,
चिटकाई जिनमें चिंगारी,
जो चढ़ गये पुण्यवेदी पर लिए बिना गर्दन का मोल
कलम, आज उनकी जय बोल।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की यह पंक्तियाँ समर्पित हैं भारतमाता के उन वीर सपूतों के लिए जिन्होंने भारतमाता की पराधीनता की बेड़ियाँ काँटने के लिए हँसते–हँसते अपने शीश कटवा दिये, जेलों की कठोर यातनाएँ सही और अपने देश की स्वाधीनता के लिए संघर्ष करते हुए जिंदगी व जवानी को झोंक दिया। वे क्रान्तिकारी ऐसे वीर, साहसी व पराक्रमी थे जिनके हृदय व मस्तिष्क में केवल और केवल देश की आजादी का ही स्वप्न था। बड़े से बड़े प्रलोभन भी उन्हें अपने इस ध्येय से विचलित न कर सकते थे।

अतः देश को स्वाधीन कराने का बहुत बड़ा श्रेय क्रान्तिकारियों को ही जाता है। क्रान्तिकारियों के अनवरत बलिदान ने ही देश को जगाया व अंग्रेज सरकार की जड़ें हिला दी थी। अंग्रेजों को दिन में भी तारे दिखने लगे और उन्हें धीरे–धीरे यह समझ आने लगा था की अब ज्यादा समय वो भारत पर शासन नहीं कर सकेंगे। इसलिए यह कहना कि आजादी बिना खड्ग, बिना ढोल आई, यह नितांत झूठ व इन समस्त क्रांतिकारियों के साथ अन्याय होगा।

४ अक्टूबर १६८१ के 'धर्मयुद्ध' में इतिहास प्रसिद्ध चौरी–चौरा कांड के डिक्टेटर श्री द्वारिका प्रसाद पाण्डेय ने जोर देकर अपनी पत्रिका में छपवाया था कि –"स्वतंत्रता हमें अहिंसा से नहीं, क्रान्ति आन्दोलन से मिली है।" उसी वर्ष एक पत्रिका के दीपवाली विशेषांक क्रांतिकारियों के नाम समर्पित करते हुए आजादी का अधिकांश श्रेय क्रान्तिकारियों को ही दिया गया था।

ऐसे ही बलिदानी क्रान्तिकारी, अपने खून से यहां की मिट्टी को पवित्र करने वाले भारत माँ के वीर पुत्रों में एक लोकप्रिय नाम है – **पंडित चंद्रशेखर आजाद।**

चन्द्रशेखर आजाद का जन्म मध्यप्रदेश के अलीराजपुर के पास गाँव भाभरा में २३ जुलाई १६०६ को एक अत्यंत निर्धन परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम सीताराम तिवारी और माता का नाम जगरानी देवी था। बचपन से पढ़ने–लिखने में विशेष रूचि न थी किन्तु बाल्यकाल से ही बड़े वीर और चतुर थे। जब यह पाँच वर्ष के थे तब दीपावली के अवसर पर अपने अन्य साथियों के साथ दिया सलाई खेल रहे थे। तभी इन्हे विचार आया की सारी तिलियां एक साथ जलाने से बहुत अधिक रोशनी होगी। उन्होंने सारी तीलियां इकट्ठी की किन्तु उनके किसी साथी की हिम्मत ना हुई उन्हें जलाने की तब चंद्रशेखर ने आगे बढ़कर सारी तीलियां अकेले जला दी जिसमें इनका हाथ भी जल गया। जब इनके मित्रों ने औषधि लगाने को कहा तो उनका उत्तर था – "जला है तो स्वयं ही ठीक हो जाएगा।"पूत के पांव पालने में ही दिखते हैं यह इस घटना से सिद्ध होता है क्योंकि इसी वीरता और साहस के साथ चंद्रशेखर जीवन भर लड़ते रहे पर कभी हार नहीं मानी।

दूसरी महत्वपूर्ण घटना उनके जीवन में तब घटी जब वे पन्द्रह वर्ष की आयु के थे उस समय गांधी जी का असहयोग आंदोलन चल रहा था। देश के अनेको क्रान्तिकारी छात्र व नौजवान उसमें अपना सर्वस्व न्योछावर करके भाग ले रहे थे। भला चंद्रशेखर कैसे पीछे रह सकते थे। वे भी इस आंदोलन में कूद पड़े। तभी कशी के मेले में अंग्रेजोंद्वारा कुछ नेताओं और जनता को पीटते देखा तो इनसे रहा न गया और अंग्रेजो के सर पर पत्थर मार दिया। इन्हें पकड़कर मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। मजिस्ट्रेट द्वारा नाम पूछने पर उन्होंने बड़े अकड़ कर जवाब दिया 'आजाद', तुम्हारे पिता का नाम –'स्वतंत्रता', तुम्हारा घर? – 'जेलखाना'।

यह सुनकर मजिस्ट्रेट गुस्से से लाल हो गया और इन्हें १५ बेंतो की सजा दी। हर पड़ते हुए बेंत पर चंद्रशेखर 'वंदे मातरम' और 'भारत माता की जय' का नारा लगाते। प्रत्येक बेंत को चंद्रशेखर ने बड़े ही धैर्य और वीरता के साथ सहन किया। पीठ का मांस छिल कर अलग हो गया। रक्त की धारा इनकी पीठ से बहने लगी। यह सम्भव नहीं है कि आज के किसी पन्द्रह वर्ष के बालक पर इतने बेंत बरसाए जायें और वो बेहोश न हो, किन्तु धीर, वीर चंद्रशेखर इतने पर भी भारत माँ के नारे लगाते रहे।

उक्त घटना के बाद से ही की इनका क्रान्तिकारी जीवन में प्रवेश हुआ और यही से इनका नाम चंद्रशेखर तिवारी से चंद्रशेखर आजाद हो गया। इन्होंने प्रतिज्ञा की अब वे अंग्रेजो की गिरफ्त में कभी नहीं आएंगे और जीवन भर 'आजाद' ही रहेंगे। उनका प्रसिद्ध नारा था –

दुश्मन की गोलियों का सामना करेंगे ।
आजाद ही रहे हैं, आजाद ही रहेंगे ।।

गांधी जी के अचानक असहयोग आंदोलन बंद कर देने से उनके विचारों में परिवर्तन आया। देश को स्वाधीन कराने के लिए कौन सा रास्ता सही होगा इस गम्भीर समस्या पर वे विचार करने लगे और अंत में इस निर्णय पर पहुंचे कि देश को स्वाधीन कराने के लिए क्रान्ति का रास्ता ही अपनाना होगा। अहिंसा के मार्ग पर चलकर स्वाधीनता प्राप्त नहीं की जा सकती क्योंकि अंग्रेज अहिंसा से कभी भी भारत को नहीं छोड़ेंगे वरन उनका मानना था कि अंग्रेजों से लड़ कर, उनसे अपनी आजादी छीन कर के ही हम अपने देश को स्वतंत्र करा सकते हैं। उनके सम्मुख दो रास्ते थे – एक था शांति का रास्ता, दूसरा था क्रान्ति का रास्ता। एक था नरम दल का रास्ता, दूसरा था गरम दल का रास्ता। एक था कांग्रेस में शामिल होने का और दूसरा था क्रान्तिकरी दल में शामिल होने का।

चंद्रशेखर आजाद ने क्रान्ति के कठिन व दुर्गम रास्ते को चुना क्योंकि वे मानते थे की देश की स्वाधीनता क्रान्ति के दुर्गम मार्ग पर चलकर ही लाई जा सकती है। कांग्रेस अंग्रेजों के साथ मिलकर समझौतावादी तरीके से आजादी लाना चाहती थी। किन्तु आजाद अंग्रेजों से किसी भी प्रकार के समझौते के पक्ष में न थे। उनका कहना था कि अंग्रेज जब तक इस देश में शासक के रूप में रहेंगे हमारी उनसे गोली चलती ही रहनी चाहिए। समझौते का कोई अर्थ नहीं। अंग्रेजों से हमारा एक ही समझौता हो सकता है कि वे अपना बोरिया–बिस्तर बांध कर यहां से चल दें।

किन्तु इसके साथ ही आजाद 'समाजवादी' लक्ष्य को भी स्वीकारते थे। वह लक्ष्य था, देश की ऐसी स्वतंत्रता जिसमें देश के सभी लोगों को समान अधिकार मिले, सभी व्यक्तियों के पास जीविका उपार्जन और जीवन के विकास का समान अवसर हो। इसी लक्ष्य को लेकर के उन्होंने अपने अन्य क्रान्तिकारी साथी राम प्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला खान, रोशन सिंह, भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरू आदि के साथ मिलकर एक नए संगठन **हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक एसोसिएशन** का गठन किया। चंद्रशेखर आजाद इस संगठन के चीफ कमांडर थे। इस संगठन का नेतृत्व करते हुए उन्होंने

काकोरी कांड, साइमन कमीशन का विरोध, सांडर्स वध, लाहौर असेम्बली में बम कांड जैसे कई क्रान्तिकारी गतिविधियों को अंजाम दिया। जिसके फलस्वरूप इनके दल की चर्चा पूरे देश में होने लगी। अंग्रेजों से यह सहन नहीं हो रहा था, वे अंग्रेज सरकार की आँख में किरकरी बनकर चुभने लगे और उन्होंने पण्डित जी को पकड़ कर सरकार को सौंपने वाले पर इनाम घोषित कर दिया। किन्तु वे हमेशा अंग्रेजों को चकमा दे कर भाग निकलते।

अपनी इन्ही क्रान्तिकारी गतिविधियों के चलते २७ फरवरी १९३१ के दिन चंद्रशेखर आजाद अपने एक मित्र सुखदेवराज के साथ प्रयागराज के अल्फ्रेड पार्क में बैठे विचार विमर्श कर रहे थे। किसी मुखबिर से अंग्रेजों को यह सूचना मिल गयी और उन्होंने उस पार्क को चारो तरफ से घेर लिया। चंद्रशेखर आजाद ने अपने मित्र सुखदेव को वहां से तुरंत ही भगा दिया। किन्तु स्वयं अंग्रेजों से काफी देर तक लड़ते रहे। दोनों तरफ से कई राउंड गोलियों के चले किन्तु अंत में चंद्रशेखर आजाद के पास जब केवल एक ही गोली बची तो उन्होंने अपने आजाद रहने के प्रण को निभाते हुए और शत्रु के हाथों से मरने के बजाये स्वयं ही मरना स्वीकार करते हुए अपनी कनपटी पर गोलीमार ली और मात्र २५ वर्ष की अल्पायु में ही भारतमाता का यह वीर पुत्र सदा के लिए अमर हो गया। कहते हैं अंग्रेज अफसर चंद्रशेखर आजाद से इतने भयभीत थे की उनके मरने के पश्चात भी किसी में उनके पास जाने की हिम्मत न थी। उनकी लाश पर ३–४ गोलियां मारने के बाद जब उन्हें पूरा विश्वास हो गया तब ही वह उनके पास जाने ही हिम्मत कर सके। किसी कवि ने चंद्रशेखर आजाद की ख्वाहीश को बड़े ही सुन्दर शब्दों में लिखा है –

घेर लेंगी जब चारो तरफ से मुझे दुश्मन की गोलियां,
छोड़ कर चल देंगी जब मुझे मेरे दोस्तों की टोलियां,
ऐ वतन ! मैं तब भी तेरे ही नग्में गाऊंगा।
आजाद ही जिन्दा रहा, आजाद ही मर जाऊंगा।।

पाठको! आज पुनः हमारे राष्ट्र को चंद्रशेखर आजाद जैसे युवाओं की आवश्यकता है, जो बड़े से बड़े कष्ट को सहकर भी अपने राष्ट्र के लिए बलिदान देने व तन, मन, धन से कार्य करने को तैयार हों। किन्तु बड़े अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि आज हमारे देश के युवाओं के आदर्श यह वीर क्रान्तिकारी न होकर निम्न कोटि के चरित्रहीन, नाचने वाले अभिनेता, कलाकार व क्रिकेटर आदि हैं जो इस देश की भावी पीढ़ी को गर्त में ले जाने का काम कर रहे हैं। उनके समक्ष रंग रूप, फैशनबाजी, अश्लीलता व व्यसनों का ही प्रचार कर रहे हैं। इसी के साथ आज के युवाओं का राष्ट्रभक्त, ईश्वरभक्त न होने का व स्वार्थपरक होने का दूसरा बड़ा कारण मैकाले द्वारा प्रणीत संस्कारो से विहीन हमारी यह शिक्षा पद्धति है। जिसे हम आज तक लादे हुए हैं। जो शिक्षा व्यवस्था मैकाले ने हमारे देश के लोगों के आत्म–गौरव और स्वाभिमान को नष्ट कर हमें सदैव गुलाम रखने के लिए बनाई थी, आज तक हम उसे बदल नहीं पाए हैं। भारतीय वैदिक संस्कृति से द्वेष करने वाले देश के धूर्त, भ्रष्ट व गद्दार नेताओं ने कभी इस ओर ध्यान नहीं दिया। वे यही चाहते हैं कि इसी प्रकार देश के युवा संस्कारविहीन होकर अभिनेताओं की नकल कर नशे व व्यभिचार में डूबे रहें, जिससे उनका पौरुष और वीरत्व समाप्त हो जाये और इन नेताओं के राजनैतिक उल्लू सधते रहें और इस देश में किसी प्रकार की कोई क्रांति नहीं होने पावे।

आर्यो! अब भी समय है उठो, जागो और इस संस्कारहीन कुशिक्षा को हटाकर महर्षि दयानन्द प्रणीत आर्ष प्रणाली से युक्त वैदिक शिक्षा को इस देश में प्रतिष्ठित कर एक समग्र क्रान्ति का उद्घोष करो। तब ही हमारे समाज व राष्ट्र का यह अवरुद्ध प्रगति चक्र पुनः आगे की तरफ घूम सकेगा। अस्तु

आर्यों की महान विद्या

ईश्वर प्रदत्त चार वेद

वेद	प्राप्तकर्त्ता	विषय
ऋग्वेद	ऋषि अग्नि	ज्ञान
यजुर्वेद	ऋषि वायु	कर्म
सामवेद	ऋषि आदित्य	उपासना
अथर्ववेद	ऋषि अङ्गिरा	विज्ञान

ऋषिकृत् ग्रन्थ

छ: अङ्ग

१. शिक्षा
२. कल्प
३. व्याकरण
४. निरुक्त
५. छंद
६. ज्योतिष्

छ: उपाङ्ग

दर्शन	रचियता
१. पूर्वमीमांसा	जैमिनि मुनि
२. वैशेषिक	कणाद् मुनि
३. न्याय	गौतम मुनि
४. योग	पतंजलि मुनि
५. सांख्य	कपिल मुनि
६. वेदान्त	व्यास मुनि

वेद	उपवेद	उपवेद का विषय	ब्राह्मण ग्रन्थ
ऋग्वेद का	१. आयुर्वेद	वैद्यक शास्त्र	१. ऐतरेय ब्राह्मण
यजुर्वेद का	२. धनुर्वेद	राजनीति विद्या	२. शतपथ ब्राह्मण
सामवेद का	३. गान्धर्ववेद	गानविद्या	३. साम ब्राह्मण
अथर्ववेद का	४. अर्थवेद	शिल्प विद्या	४. गोपथ ब्राह्मण

दस उपनिषद् – १. ईश २. केन ३. कठ ४. प्रश्न ५. मुण्डक ६. माण्डूक्य ७. ऐतरेय ८. तैतिरीय ९. छान्दोग्य १०. बृहदारण्यक

ऋषि निर्देश - इनमें भी जो-जो वेद विरूद्ध प्रतीत हो उसे छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त, स्वत: प्रमाण, अर्थात् वेद का प्रमाण वेद से ही होता है ब्राह्मणादि ग्रंथ परत: प्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है।

आर्य विद्या का प्रवेश द्वार-"सत्यार्थप्रकाश एवं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका"